राज्य सभा में
राष्ट्रकवि
मैथिलीशरण गुप्त

राज्य सभा सचिवालय

राज्य सभा में राष्ट्रकवि

मैथिलीशरण गुप्त

डा॰ योगेन्द्र नारायण
महासचिव
राज्य सभा

राज्य सभा सचिवालय
नई दिल्ली
2005

एफ० सं० आर० एस० 17/12/2005 — आर एंड एल

©2005, राज्य सभा सचिवालय, नई दिल्ली

राज्य सभा वेबसाइट:
http://parliamentofindia.nic.in
http://rajyasabha.nic.in
E-mail : rslib@sansad.nic.in

विचार लो कि मर्त्य हो, न मृत्यु से डरो कभी
मरो, परन्तु यों मरो कि याद जो करें सभी।
हुई न यों सु–मृत्यु तो वृथा मरे, वृथा जिये,
मरा नहीं वही कि जो जिया न आपके लिए।।

–मैथिलीशरण गुप्त

सत्यमेव जयते

सभापति, राज्य सभा
संसद भवन, नई दिल्ली

प्राक्कथन

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त युगदृष्या और महान कवि होने के साथ-साथ राज्य सभा के सदस्य भी थे इसलिए राज्य सभा के सभापति के रूप में मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि पूर्व सांसद एवं राष्ट्रकवि के कृतित्व एवं व्यक्तित्व के संबंध में एक पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है।

मैथिलीशरण गुप्त हमारे देश के राष्ट्रकवि और प्रथम राज्य सभा के नामित सदस्य थे। वे 1952 से 1964 तक राज्य सभा के सदस्य रहे। अपनी बढ़ती हुई उम्र में भी वे एक जागरूक सांसद थे। वे राज्य सभा की बैठकों में अस्वस्थता के बावजूद नियमित रूप से भाग लेते थे। राज्य सभा की कार्यवाही में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहता था। उनके भाषण हमेशा कविता में होते थे। बजट जैसे शुष्क विषय पर भी वे कविता में ही अपने विचार प्रकट करते थे। सामान्यतया जो घाटे का बजट प्रस्तुत किया जाता है, उसके विषय में उन्होंने एक बार कहा था —

आय कठिन व्यय सहज
मिलेगा क्या दोनों का मेल कभी ।

उनकी अतुलनीय प्रतिभा और हमारे राष्ट्र और हिंदी भाषा की उन्होंने जो सेवा की उसके संबंध में हमारे देश के प्रथम राष्ट्रपति डा॰ राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था–''राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त में देश भक्ति की गंगा और श्री राम भक्ति की यमुना प्रवाहित होती है। स्वयं वह सलिला सरस्वती के समान हैं। इस प्रकार उक्त तीनों गुणों से युक्त राष्ट्रकवि त्रिवेणी से भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। राष्ट्रकवि की प्रतिभा कृतियों में झलक रही है। वे किसी के शब्दों के मोहताज नहीं हैं। राष्ट्रकवि ने इस देश को और हिंदी-भाषियों को जो साहित्य प्रदान किया है, वह अतुलनीय है।''

गुप्तजी ने अपने जीवन में जिन आदर्शों का पालन किया और नैतिक मूल्यों का अनुसरण किया वह आज भी हम सबके लिए प्रेरणा का स्रोत हैं। वे प्राचीन और नवीन के समन्वय में विश्वास रखते थे। भगवान राम के अनन्य भक्त होते हुए भी वे सभी धर्मों

का आदर करते थे। भगवान राम की भांति ही वे मर्यादा के पालन में अटूट विश्वास रखते थे। वे व्यक्ति के जीवन में आचार-व्यवहार को सबसे अधिक महत्व देते थे। उनका विश्वास था कि जन्म से कोई व्यक्ति श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ नहीं बनता है बल्कि कर्म से ही महान और ऊंचा-नीचा बनता है। उनके मन में नारी जाति के प्रति बहुत अधिक सम्मान था। उनका कहना था कि नारी जाति के सक्रिय सहयोग के बिना राष्ट्र का उत्थान संभव नहीं है। उसी प्रकार वे देश के युवा वर्ग में भी राष्ट्र का भविष्य देखते थे। उनकी कविता की एक पंक्ति है —

है नवयुवकों देश भर की दृष्टि तुम पर ही लगी।

झांसी के निकट चिरगांव में गुप्तजी का जन्म आज से लगभग 117 वर्ष पूर्व संवत् 1943 (ईस्वी सन् 1886) में हुआ था। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के इस युग में जहां एक ओर देश में सांस्कृतिक और धार्मिक चेतना की भावना का सूत्रपात हो रहा था वहीं दूसरी ओर अंग्रेजों की दासता के विरोध में जन चेतना जाग्रत होने लगी थी। गुप्तजी ने बचपन से ही कविताओं की रचना करना प्रारंभ कर दिया और उन्होंने अपनी काव्य रचना में जहां एक ओर गोस्वामी तुलसीदास की तरह भगवान राम का गुणगान किया वहीं दूसरी ओर अपनी अनेक रचनाओं में राष्ट्र प्रेम और स्वतंत्रता का शंखनाद किया। अंग्रेजों के दमनकारी युग में राष्ट्र प्रेम से परिपूर्ण 'भारत भारती' जैसे ग्रंथ की रचना करना वास्तव में एक अदभुत साहस का कार्य था। देशभक्ति से परिपूर्ण अपनी रचनाओं के कारण गुप्तजी को जेल भी जाना पड़ा लेकिन जेल की यातनाएं भी उनके राष्ट्र प्रेम को धूमिल नहीं कर पायीं।

गुप्तजी की राष्ट्रवादी प्रवृत्तियां गांधी जी के आदर्शों से प्रभावित हुईं। उन्होंने अहिंसक क्रांति के लक्ष्य को अपनाया और गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा देश की प्रगति की संभावना पर विश्वास किया। अस्पृश्यता निवारण, जातीय एकता, सर्वधर्म समभाव जैसे मानवीय आदर्शों पर उन्होंने केवल आस्था ही नहीं रखी वरन् काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी दी। भारत की समन्वयतावादी संस्कृति को उन्होंने अपने खंडकाव्यों 'काबा और कर्बला' में दर्शाया। इन कृतियों की रचना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा –"हमें एक दूसरे के प्रति उदार और सहिष्णु होना होगा, एक दूसरे से परिचय और प्रेम बढ़ाना होगा।" 1941 में आंदोलन के समय श्री मैथिलीशरण गुप्त बंदी बनाये गये और कई महीनों तक जेल में रहे। जेल में भी उन्होंने अन्य

सत्याग्रहियों के साथ सूत कातना जारी रखा। इस बात का जिक्र करते हुए 12 अक्तूबर, 1941 को सेवाग्राम में दिए गए अपने भाषण में गांधी जी ने कहा था –

> आज कविता उनकी कलम से नहीं निकलती वरन् उनके सूत के तारों से निकलती है। मैंने उनको आज ही एक छोटा सा उत्तर लिखा है। लेकिन उसमें भी मेरी कलम से यह चीज निकल गई कि आपने और आपके साथियों ने जितना सूत काता है, उतना ही आप लोग स्वराज्य नजदीक लाए हैं।

श्री मैथिलीशरण गुप्त विशेष रूप से हिंदी भाषा को उचित स्थान दिलाने हेतु सदा प्रयासरत रहे। राज्य सभा की कार्यवाही में भाग लेते समय उन्होंने हिंदी भाषा की महत्ता को व्यक्त करते हुए कहा –

हिंदी का उद्देश्य यही है
भारत एक रहे 'अविभाज्य'...

उनका यह हिंदी प्रेम संकुचित दायरों में बंधा हुआ नहीं था। वह अन्य सभी प्रांतीय भाषाओं के उत्थान और प्रसार के पक्षधर थे। उन्होंने संपूर्ण देश में एक राष्ट्रभाषा के प्रयोग की उपयोगिता पर जोर देते हुए सदन में कहा था —

बिना राष्ट्र भाषा स्वराष्ट्र को
गिरा आप गूंगी असमर्थ
एक भारती बिना हमारी
भारतीयता का क्या अर्थ।

गुप्तजी जन-जन के कवि थे। गोस्वामी तुलसीदास, संत कबीर, मलूक दास, रहीम, रसखान आदि की भांति गुप्तजी की कविताएं भी जन-जन को प्रिय थीं और आज तक लोग अपने मनोभावों को प्रकट करने के लिए उनकी कविताओं की पंक्तियों को उद्धृत करते हैं। जब भी नारी जाति की बेबसी की बात करते हैं तो प्रायः गुप्त जी की निम्नलिखित पंक्तियां उद्धृत की जाती हैं —

'अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी
आंचल में है दूध और आंखों में पानी'

जब कहीं प्रेरणा देने की बात कही जाती है तो गुप्तजी की ये पंक्तियां आज भी उद्धृत की जाती हैं –

करके विधि-वाद न खेद करो,
निज लक्ष्य निरंतर भेद करो,
बनता बस उद्यम ही विधि है,
मिलता जिससे सुख का निधि है।
समझो धिक् निष्क्रिय जीवन को,
नर हो, न निराश करो मन को।

इसी प्रकार 'भारत भारती' में जो उन्होंने प्रश्न उठाया था –

हम कौन थे? क्या हो गये हैं?
और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर
यह समस्यायें सभी।

वह आज भी न केवल प्रासंगिक है बल्कि इसका समुचित उत्तर खोज कर ही हम देश को आगे ले जा सकते हैं।

मेरे विचार में गुप्तजी संत कवियों की परम्परा में थे। उन्होंने अपनी अनगिनत रचनाओं में शाश्वत सत्य को प्रतिपादित किया। 'भारत भारती' में देश की जिस दारुण स्थिति का वर्णन किया गया था दुर्भाग्य से आज भी लगभग वैसी ही स्थिति है। उस स्थिति में और आज की स्थिति में एक महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि हम आज आजाद हैं और अपने भाग्य के निर्माता हैं। आज हम खाद्यान्न में आत्मनिर्भर हैं, विदेशी मुद्रा के भण्डार की स्थिति संतोषजनक है। हमारे सूचना प्रौद्योगिकी के विशेषज्ञों, इंजीनियरों, डॉक्टरों आदि ने पूर्ण विश्व में ख्याति अर्जित की है।

लेकिन आज यदि हम अपने समाज और आसपास के परिवेश पर नजर डालें तो पाएंगे कि स्थिति वास्तव में ऐसी है जिसके संबंध में आज हमें मिल बैठ कर विचार कर उसके निराकरण के उपाय करने चाहिएं। जिस समय देश आजाद हुआ था उस समय हमारे देश की जनसंख्या लगभग 36 करोड़ थी। आज देश में लगभग उतने ही लोग गरीबी की रेखा के नीचे जीवनयापन करने को विवश हैं। हमारी जनसंख्या इस समय एक सौ करोड़ का आंकड़ा पार कर गयी है। आज भी एक चौथाई से अधिक जनसंख्या निरक्षर है। एक रिपोर्ट के अनुसार आज पूरे विश्व में हमारे देश का स्थान 127वां है। कभी सोने की चिड़िया और विश्व का सिरमौर कहे जाने वाले देश की यह स्थिति

वास्तव में विचारणीय है। नारी जाति को आज भी समाज में सम्मान और उचित स्थान प्राप्त नहीं है। दहेज और यौन शोषण की शिकार महिलाओं की दर्दभरी दास्तान लगभग प्रतिदिन समाचार-पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं। आज हमारे लोकतंत्र के चारों स्तंभों की विश्वसनीयता पर प्रश्न चिह्न लग रहा है। न्याय प्रक्रिया इतनी लम्बी और जटिल होती जा रही है कि समान्यजन के लिए त्वरित गति से न्याय प्राप्त करना एक दुरूह कार्य बना हुआ है। न्याय प्रक्रिया की ही भांति हमारी चुनाव प्रक्रिया की सार्थकता पर भी प्रश्न चिह्न लगने लगा है। लोक सभा और विधानसभाओं के चुनाव अलग-अलग और बार-बार होने के कारण चुनावों में जातिवाद, धन बल और बाहुबल का वर्चस्व बढ़ने लगा है। केवल त्याग, योग्यता के आधार पर किसी साधन विहीन व्यक्ति के लिए किसी विधान सभा या लोक सभा में चुना जाना आज एक दुरूह कार्य हो गया है।

आज दुर्भाग्य से भ्रष्टाचार और निरंतर प्रदूषित होता हुआ पर्यावरण एक विस्फोटक रूप लेता जा रहा है। इन समस्याओं और जनसंख्या वृद्धि के प्रति हम सब एक तरह से तटस्थ और उदासीन से हो गए हैं। गुप्तजी की निम्नलिखित दो पंक्तियां हम सबके लिए प्रेरणा की स्रोत हैं —

आओ विचारें आज मिलकर,
यह समस्याएं सभी।

हमें उपरोक्त समस्याओं पर एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाकर संसद और विधानमंडलों में इनके संबंध में गंभीर विचार-विमर्श कर एक ऐसी रणनीति तैयार करनी चाहिए जिससे हम अपने देश का सर्वांगीण विकास कर आने वाली पीढ़ी के लिए देश का भविष्य सुरक्षित रख सकें। मेरा यह निश्चित मत है कि ये सभी समस्याएं किसी राजनीति अथवा राजनीतिक दल से संबंधित नहीं हैं बल्कि इन सबके साथ पूरे देश का भविष्य जुड़ा हुआ है। मुझे हमारे देश के युवा वर्ग, महिला शक्ति और संपूर्ण जनता की अपरिमित शक्ति और सामर्थ्य में पूरा विश्वास है। आज केवल आवश्यकता इस चीज की है कि हम राष्ट्रहित में देश की चेतना को जाग्रत् करें और सभी समस्याओं के समाधान का रास्ता निकालें। मुझे विश्वास है कि गुप्तजी की कालजयी रचनायें और जीवन आदर्श हम सभी को राष्ट्र प्रेम की भावना से प्रेरित होकर दल इन सभी समस्याओं का समाधान करने की प्रेरणा देंगे।

राज्य सभा में हिन्दी प्रयोग को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से हमने इस वर्ष जुलाई में राज्य सभा सचिवालय की हिन्दी सलाहकार समिति का गठन किया है। राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार के लिए किए गए प्रयासों द्वारा हम राष्ट्रकवि को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित

कर सकेंगे। इस संदर्भ में ''राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त'' पुस्तक का प्रकाशन निश्चय ही प्रशंसनीय है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा राज्य सभा में हिन्दी में दिए गए उनके अद्वितीय योगदान पर आधारित यह प्रकाशन पाठकों को अवश्य ही ज्ञानवर्धक और रुचिकर लगेगा।

(भैरोंसिंह शेखावत)

17 सितम्बर, 2005

प्रस्तावना

राज्य सभा भारतीय संसद का उच्च सदन है जो भारत के राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी संवैधानिक संरचना इस प्रकार की है कि इसमें राष्ट्रीय कार्य-कलापों के विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट कार्य करने वाले प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों को प्रतिनिधित्व मिल सके। संविधान के अनुच्छेद 80, खंड 3 के अनुसार राष्ट्रपति साहित्य, विज्ञान, कला तथा समाज सेवा क्षेत्र के 12 प्रतिष्ठित व्यक्तियों को राज्य सभा में नाम-निर्देशित कर सकते हैं। इस प्रकार अनेक गणमान्य व्यक्तियों ने इस सदन की गरिमा को बढ़ाया है और राज्य सभा की कार्यवाही में अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। श्री मैथिलीशरण गुप्त उन महानुभावों में से एक थे जिन्हें राष्ट्रपति द्वारा 1952 में पहली बार नाम-निर्देशित किया गया था। अप्रैल 1958 में वह राष्ट्रपति द्वारा पुनः नाम-निर्देशित किए गए।

श्री गुप्त एक प्रबुद्ध चिंतक और संवेदनशील कवि थे। स्वतंत्रता संग्राम में उनकी रचनाओं ने देश के करोड़ों लोगों को प्रेरित और अनुप्राणित किया। राष्ट्रप्रेम उनके काव्य की एक मुख्य विशेषता थी और इस कारण वे राष्ट्रकवि के नाम से लोकप्रिय हुए। सन् 1941 में, राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान उन्हें बंदी बनाया गया और वह सात माह तक जेल में रहे। श्री मैथलीशरण गुप्त की सृजनात्मकता बहुआयामी थी। उन्होंने भारतीय साहित्य के विपुल भंडार को और समृद्ध किया। वह भारतीय संस्कृति के प्रणेता थे, राष्ट्रीय स्वाभिमान के उद्‌बोधक थे, परन्तु उनका साहित्य राष्ट्र की सीमाओं तक बंधा हुआ नहीं था। अपनी रचनाओं में उन्होंने सार्वकालिक और सार्वभौमिक चेतना का आह्वान किया और विश्व-बंधुत्व का प्रतिपादन किया —

किन्तु हमारा लक्ष्य, एक अम्बर, भू सागर,
एक नगर-सा बने विश्व, हम उसके नागर।

अपनी काव्य प्रतिभा की छाप उन्होंने राज्य सभा की कार्यवाहियों में भी छोड़ी है। यह उनकी विशेषता थी कि राज्य सभा में उठाए जाने वाले विभिन्न विषयों पर अपने विचार वह सुबोध काव्य में स्पष्ट करते थे। उनके काव्यात्मक भाषणों को सदन में बड़े ध्यान से सुना जाता था। **राज्य सभा में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त** नामक यह प्रकाशन राष्ट्रकवि के संक्षिप्त जीवन परिचय के साथ-साथ एक मनोनीत संसद सदस्य के रूप में

राज्य सभा के वाद-विवाद में उनकी भागीदारी पर प्रकाश डालता है। गुप्त जी सरल व्यक्तित्व के धनी थे। वह ऐसे जीवन-मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते थे जो सत्य और निष्ठा पर आधारित हैं। साहित्य और संसद दोनों क्षेत्रों में उनका योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने राष्ट्रभाषा के उन्नयन पर सदैव जोर दिया। साथ ही उन्होंने अन्य भारतीय भाषाओं को भी पूरा सम्मान दिया। वह हिंदी शिक्षा समिति के सदस्य भी रहे।

राज्य सभा के माननीय सभापति श्री भैरोसिंह शेखावत ने जुलाई 2005 में राज्य सभा सचिवालय की हिन्दी सलाहकार समिति का गठन किया है। इसके अतिरिक्त, राज्य सभा सचिवालय के लिए उन्होंने राजभाषा कार्यान्वयन समिति का भी गठन किया है। ये दोनों समितियां सरकारी कामकाज में हिन्दी भाषा के प्रयोग को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से गठित की गई हैं। इस परिप्रेक्ष्य में और मुख्य रूप से हिन्दी पखवाड़ा समारोह के अवसर पर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा राज्य सभा की कार्यवाही में दिए गए अनूठे योगदान पर आधारित यह पुस्तक निश्चय ही एक समयोचित प्रयास है।

मैं इस पुस्तक के प्रकाशन में राज्य सभा सचिवालय की निदेशक, भारती तिवारी द्वारा किए गए कार्य की सराहना करता हूं और आशा करता हूं कि यह प्रकाशन पाठकों के लिए रुचिकर और उपयोगी सिद्ध होगा।

डा॰ योगेन्द्र नारायण
महासचिव,
राज्य सभा।

नई दिल्ली
सितम्बर, 2005

विषय सूची

		पृष्ठ
1.	प्राक्कथन	(i)—(vi)
2.	प्रस्तावना	(vii)-(viii)
3.	जीवन परिचय	1—5
4.	राज्य सभा में राष्ट्रकवि	9—25
5.	स्मृति के वातायन से	29-30
6.	राष्ट्रकवि के संस्मरण	33
7.	राष्ट्रपिता के पत्र राष्ट्रकवि के नाम	37—40
	परिशिष्ट–I	41-42
	परिशिष्ट–II	43-44
	संदर्भ	45

श्री मैथिलीशरण गुप्त

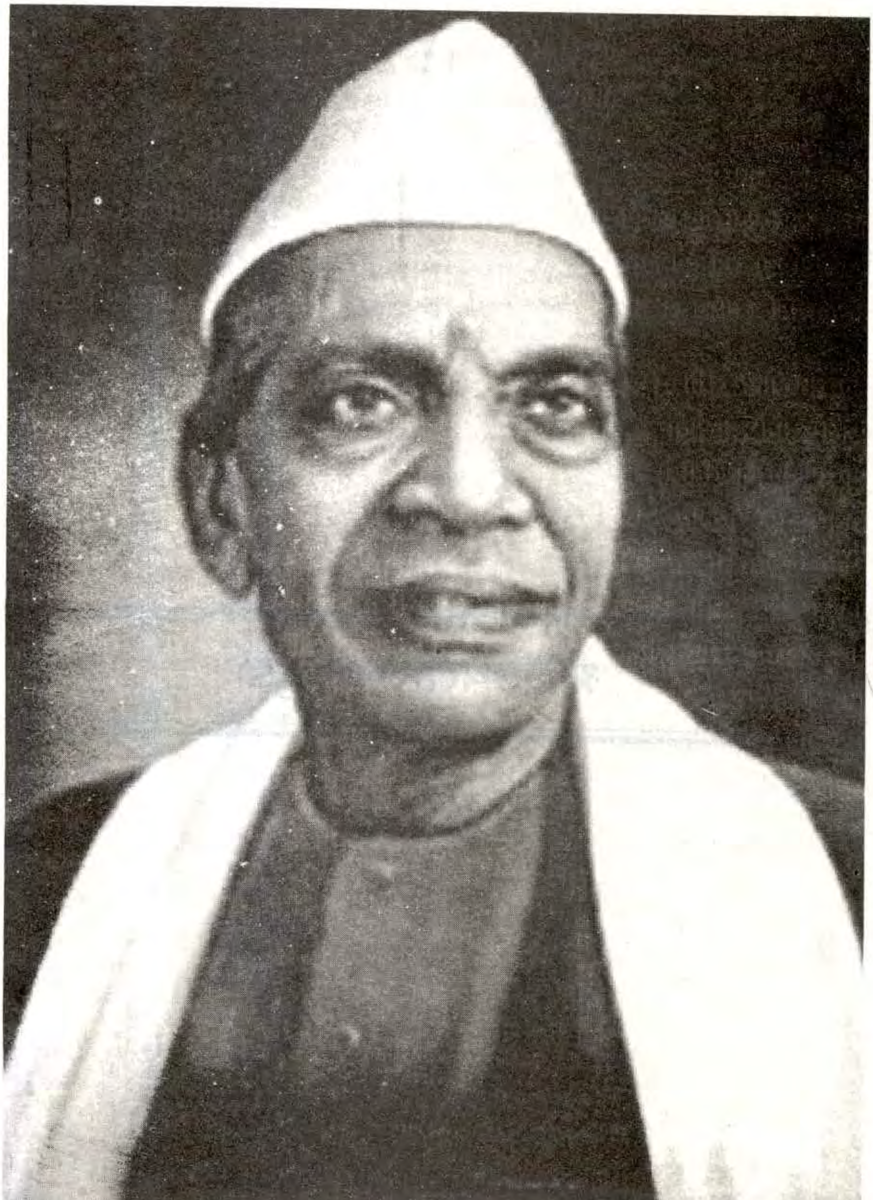

श्री मैथिलीशरण गुप्त

मानद डी. लिट्., साहित्य वाचस्पति; पद्म-विभूषण से सम्मानित (दूसरा वर्ग), 1954; नाम-निर्देशित; स्वर्गीय सेठ रामचरण के आत्मज; *जन्म*: चिरगांव में, 3 अगस्त, 1886; *शिक्षा*: निजी रूप से; कम आयु में कविता लिखनी आरंभ कर दी; *विवाह*: श्रीमती सरयू देवी से, जनवरी 1916; एक पुत्र; लेखक; पूर्व अध्यक्ष, नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस; पूर्व सदस्य, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद; अध्यक्ष, साहित्यकार संसद, इलाहाबाद; कांग्रेस के आंदोलन के सिलसिले में अप्रैल से नवम्बर, 1941 तक 7 माह के लिए जेल भेजे गये; सदस्य, हिन्दी शिक्षा समिति, सितम्बर, 1954 से; किसी भी दल से सम्बद्ध नहीं लेकिन कांग्रेस के प्रति सहानुभूति; 1952 में पहली बार राज्य सभा के लिए नाम-निर्देशित हुए; अप्रैल, 1958 में पुनः नाम-निर्देशित हुए।

विशेष रुचि: हिन्दी और संस्कृत भाषाओं एवं साहित्य तथा बंगाली, गुजराती और मराठी साहित्य का प्रचार।

मन-बहलाव: क्रिकेट और 'इंडोर' खेल।

प्रकाशन: 'साकेत'; 'गुरुकुल'; 'यशोधरा'; 'द्वापर'; 'सिद्धराज'; 'हिन्दू'; 'भारत-भारती'; 'जयद्रथ वध'; 'झंकार'; 'अनघ'; 'किसान'; 'शकुंतला'; 'विश्व वेदना'; 'काबा और कर्बला'; 'कुणाल-गीत'; 'अर्जन और विसर्जन'; 'वैतालिक'; 'पृथिवी पुत्र'; 'हिडिम्बा'; 'पंचवटी'; 'अजीत'; 'अंजलि और अर्घ्य'; 'चन्द्रहास'; 'मंगल-घट'; 'जय भारत'; 'भूमि भाग'; 'राजा-प्रजा'; 'विष्णुप्रिया'; आदि।

अनुवाद किया: 'मेघनाद वध'; 'प्लासी का युद्ध'; 'विरहिणी व्रजांगना'; 'रुबाइयात-ए-उमर ख़य्याम'; आदि।

स्थायी पता: चिरगांव, झांसी (उत्तर प्रदेश)

स्रोत: सदस्य परिचय, राज्य सभा, 1962

जीवन परिचय

समर्पित साहित्यसेवी, मानवीय संवेदनाओं के कुशल चितेरे, अपने युग के सामाजिक व राजनीतिक परिप्रेक्ष्य के सूक्ष्म विश्लेषक, ओजस्वी रचनाकार, राष्ट्रकवि एवं संसद सदस्य — इन सभी विशेषणों को समग्र रूप से देखने पर एक ही नाम उभरता है — श्री मैथिलीशरण गुप्त।

श्री मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 3 अगस्त सन् 1886 में उत्तर प्रदेश के चिरगांव नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता श्री रामचरण गुप्त प्रसिद्ध एवं सम्पन्न सेठ थे। वह जिला बोर्ड के सदस्य भी थे, जो उस समय एक सम्माननीय पद माना जाता था। शिक्षा में उनकी गहरी रुचि थी, उन्होंने स्वयं भी कुछ काव्य रचनाएं की थीं। श्री रामचरण गुप्त विदेशी शासन के सदैव विरुद्ध रहे। अंग्रेज सरकार ने 'रायबहादुर' का खिताब देकर उन्हें 'ऑनरेरी मजिस्ट्रेट' बनाना चाहा परन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। श्री मैथिलीशरण गुप्त की मां काशीबाई भी उच्च संस्कार वाली धार्मिक महिला थीं। इस प्रकार साहित्य प्रतिभा, राष्ट्रप्रेम व श्रेष्ठ संस्कार उन्हें अपने माता-पिता से स्वत: ही मिल गए थे।

विद्यार्थी जीवन में बालक मैथिलीशरण की अध्ययन में अभिरुचि नहीं थी। लोक संगीत, लोक नाट्य, कला एवं प्रकृति के सान्निध्य में रहना ही उन्हें अधिक रुचिकर प्रतीत होता था। स्कूल की पढ़ाई से विमुख होने पर भी उनका ज्ञान गहन था। उन्होंने संस्कृत, बंगाली, मराठी व गुजराती भाषाओं का अध्ययन किया तथा स्वतंत्र रूप से साहित्य, संगीत एवं चित्रकला की विधाओं में निपुणता प्राप्त की।

श्री गुप्त एक बहुसर्जक रचनाकार थे। उनकी कुछ प्रमुख रचनाएं हैं: 'रंग में भंग', 'जयद्रथ वध', 'भारत-भारती', 'पंचवटी', 'स्वदेश', 'संगीत', 'साकेत', 'यशोधरा', 'सिद्धराज', 'अंजलि और अर्घ्य', 'जय भारत', 'विष्णुप्रिया', 'रत्नावली', 'स्वस्ति और संकेत'। इसके अतिरिक्त उन्होंने महाकवि भास, माइकेल मधुसूदन दत्त, हेमचन्द्र बंधोपाध्याय, नवीन चन्द्र सेन व उमर ख़य्याम जैसे रचनाकारों की कृतियों का अनुवाद भी किया।

श्री मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रीय चेतना के कवि थे और वह जीवन पर्यन्त इस चेतना से जुड़े रहे। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उन्होंने जेल यात्रा भी की थी। स्वाधीनता संग्राम के दौर में उनकी ओजस्वी कविताओं ने राष्ट्रीय जागृति के कार्य में अनूठा योगदान दिया था। उनकी सुप्रसिद्ध काव्य रचना 'भारत-भारती' यद्यपि उग्र-राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक बन गयी थी तथापि उसका मूल उद्देश्य था, भारत की बिखरती हुई संस्कृति तथा टूटते हुए परिवेश का समन्वयीकरण —

मानस-भवन में आर्यजन जिनकी उतारें आरती,
भगवान भारतवर्ष में गूंजे हमारी भारती।

कवि की यह उद्घोषणा कालजयी बन गयी। उनकी लेखनी ने भारत के गौरवशाली अतीत, विपन्न वर्तमान व आदर्श भारत के स्वप्न को चित्रित किया। उन्होंने देश की ज्वलंत समस्याओं की ओर ध्यान दिलाया एवं समाधान सुझाए —

हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी।

राष्ट्र में घटित होने वाली प्रत्येक घटना उनके कवि मानस को मथ जाती थी और एक नई काव्य रचना निःसृत हो जाती थी। भारत की राष्ट्रीय चेतना व राष्ट्रीय उद्देश्यों को उन्होंने मानो आत्मसात् कर लिया था। इसी कारण वे राष्ट्रकवि के रूप में जाने गए। राष्ट्रीयता की भावना जो श्री मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में मुखर हुई वह सच्चे अर्थों में भारतीय संस्कृति के विराट रूप को दर्शाती है। गुप्त जी ने राष्ट्र और राष्ट्रीयता की कल्पना केवल भौगोलिक आधार पर ही नहीं की थी वरन् सांस्कृतिक परम्परा और भारतीय जीवन-दर्शन के समन्वित रूप को ही राष्ट्रीयता की आधारशिला माना था —

विद्या, कला कौशल्य में सबका अटल अनुराग हो,
उद्योग का उन्माद हो, आलस्य अघ का त्याग हो।
सुख और दुख में एक-सा सब भाइयों का भाग हो,
अन्तःकरण में गूंजता राष्ट्रीयता का राग हो।

साम्प्रदायिक सद्भाव और सौहार्द की उदात्त अवधारणा उनके काव्य में सर्वोपरि है। 'मातृमंदिर' शीर्षक रचना में अपने विचार व्यक्त करते हुए वह कहते हैं —

जाति, धर्म या सम्प्रदाय का, नहीं भेद व्यवधान यहां,
सबका स्वागत, सबका आदर, सबका सम-सम्मान यहां,
राम-रहीम, बुद्ध-ईसा का सुलभ एक-सा ध्यान यहां,
भिन्न-भिन्न सब संस्कृतियों के गुण-गौरव का ज्ञान यहां,
नहीं चाहिये, बुद्धि वैर की, भला, प्रेम-उन्माद यहां,
सबका, शिव कल्याण यहां है, पावें सभी प्रसाद यहां।

गुप्त जी के विचार में धर्म रूढ़िगत आस्थाओं का पुंज न होकर समस्त मानव जाति के उत्थान का साधन है। वह मानव मूल्यों पर आधारित है। उन्होंने धर्म के मूल तत्व को जान लिया था। ''एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'', इस शाश्वत् नीति वाक्य को उन्होंने अपने काव्य में समाहित कर लिया था। उनकी समन्वयवादी धर्म भावना इन पंक्तियों में स्पष्ट परिलक्षित होती है —

मैं तो नद का परमार्थ इसे मानूंगा,
जितने प्रवाह हैं बहें— अवश्य बहें वे,
निज मर्यादा में किन्तु सदैव रहें वे।

बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध भारत में राजनीतिक चेतना के जागरण का काल था। महात्मा गांधी के आविर्भाव से राष्ट्रीय आंदोलन को एक नई दिशा मिली। परिणामस्वरूप राष्ट्रवादी विचारधाराओं ने एक समग्र रूप ग्रहण किया। निश्चय ही महात्मा गांधी के उद्बोधनों से मैथिलीशरण गुप्त अप्रभावित न रह सके, यही कारण है कि उनकी अधिकांश काव्यकृतियों में गांधीवाद के आदर्शों की अमिट छाप दिखायी देती है। महात्मा गांधी व श्री गुप्त में इसी सामंजस्य का विश्लेषण करते हुए हिन्दी के आलोचक डा॰ प्रभाकर श्रोत्रिय लिखते हैं —

गुप्त जी का मन एक तरह से गांधी मानस था, जिसमें गांधी युग हिलोरें ले रहा था। गांधी यदि तत्कालीन भारत की राजनीति के केंद्र थे तो गुप्त साहित्य के। राजसत्ता की प्रतिशक्ति अधिकांशतः गांधी से जुड़ी थी, गुप्त भी उससे स्पंदित थे। गांधी और गुप्त दोनों का स्रोत, उनका चुना हुआ भारत का अतीत था। उसे वे समकालीन अर्थों में परिभाषित और प्रयुक्त करना चाहते थे। उनकी दृष्टि प्राचीन उत्कृष्टता को कहीं से भी उठाकर वर्तमान से जोड़ देने वाली दृष्टि थी। मध्यकाल

की मार-काट, सांप्रदायिकता और युगों से चली आ रही विषमता, शोषण वगैरह को नजरअंदाज कर वे धुर अतीत से प्राप्त 'वसुधैव कुटुम्बकम' या 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' को सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में वर्तमान के लिए प्रामाणिक मानते थे। ''आ नो भद्रा: क्रतवोयन्तु विश्वत:'' यानी संसार की हर दिशा से, जहां से जो 'भद्र' कल्याणमय मिले उसे प्राप्त करो — गुप्त और गांधी की ग्राह्य दृष्टि प्राय: यही थी।

श्री मैथिलीशरण गुप्त की अनेक रचनाओं—'गुरुकुल', 'काबा और कर्बला', 'मंगल-घट', 'अनघ', 'कुणाल', 'साकेत', आदि में गांधी दर्शन के श्रेष्ठ आदर्श जैसे सत्य, अहिंसा, करुणा, कर्मों की सार्थकता, आत्मोन्नति, साधन की शुद्धता, मानववाद, सर्वधर्म समभाव, आदि पूर्ण रूप से उजागर हुए हैं। श्री गुप्त का मानना था कि गांधी सरीखे आदर्शवादी राजनेता विश्व में विरले ही हुए हैं क्योंकि उन्हें किसी भी प्रकार की सिद्धि साधन की शुद्धता के बिना स्वीकार्य न थी। 'जय भारत' में गुप्तजी गांधी दर्शन के इस महत्वपूर्ण तथ्य की काव्यात्मक अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं —

सिद्ध नहीं होता शुद्ध साधन से साध्य जो,
उसकी विशुद्धता भी शंकनीय होती है।

इसी प्रकार 'कुणाल' के माध्यम से गांधी जी की जन कल्याण हेतु समर्पण की भावना गुप्त जी ने इस प्रकार व्यक्त की है —

अर्पित हो मेरा मनुज काय,
बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भी श्री गुप्त राष्ट्र की चेतना को अनुप्राणित करते रहे। हिन्दी साहित्य की समृद्धि में उनका योगदान स्मरणीय है। वे अनेक वर्षों तक हिन्दी शिक्षा समिति के सदस्य रहे। सन् 1954 में उन्हें पदम्-विभूषण से अलंकृत किया गया तथा सन् 1960 में राष्ट्रपति डा॰ राजेन्द्र प्रसाद द्वारा उन्हें डा॰ वासुदेवशरण अग्रवाल की अध्यक्षता में सम्पादित ''राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनंदन ग्रंथ'' भेंट कर सम्मानित किया गया। महान दार्शनिक, राजनेता एवं भारत के द्वितीय राष्ट्रपति डा॰ सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने भी राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की काव्यसाधना एवं उनके व्यक्तित्व से जुड़ी सादगी का विशेष उल्लेख अपने एक भाषण में

किया।* अपनी रचनाओं के द्वारा उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता और संस्कृति के मूल आदर्शों की रक्षा की। साहित्य जगत में उनके उल्लेखनीय योगदान व उपलब्धियों को ध्यान में रखते हुए सन् 1952 में राष्ट्रपति ने श्री मैथिलीशरण गुप्त को पहली बार राज्य सभा के सदस्य के रूप में मनोनीत किया, 1958 में उन्हें दोबारा मनोनीत किया गया। इस प्रकार 1952 से सन् 1964 तक वे राज्य सभा के सदस्य रहे।

*देखें परिशिष्ट I

राज्य सभा में राष्ट्रकवि

राज्य सभा में राष्ट्रकवि

श्री मैथिलीशरण गुप्त लगभग 12 वर्षों तक राज्य सभा के सदस्य रहे। राज्य सभा की बैठक में वह नियमित रूप से सम्मिलित होते थे। यद्यपि वह दैनंदिन कार्यवाही में भाग नहीं लेते थे फिर भी सामयिक महत्व के विषयों के संबंध में वह जो भी बोले, सारगर्भित था और उनके कवित्व की छाप लिये हुए था। उन्होंने भाषण भी सदा पद्य में ही दिये। यह उनका अपना अनूठा अंदाज था और इसके लिये उन्हें संसदीय इतिहास में सदैव स्मरण किया जाता रहेगा।

श्री चिन्तामणि देशमुख जब वित्त मंत्री थे, उस काल में गुप्त जी ने बजट के कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों पर पद्यबद्ध भाषण दिये। दोनों ही उच्च कोटि के विद्वान और काव्य प्रेमी थे। 24 अप्रैल 1954 को बजट में डाक की दरें और पान सुपारी पर कर बढ़ा दिये जाने पर श्री मैथिलीशरण गुप्त ने सदन में कहा —

> श्रीमन्, मुझे बड़ा आनन्द है कि मैं वित्त मंत्री महोदय के संबंध में आय-व्ययक पर कुछ कहने का अवसर पा रहा हूं। मुझे उनमें आस्था है और मुझे विश्वास है कि वे जो कुछ करेंगे उसमें हमारा कल्याण होगा और यही भावना प्रधान रहेगी। फिर भी अपनी बात तो कहते ही हैं लोग और इसलिये मैं भी अपनी बात अपने ढंग से निवेदन करुंगा। उससे यदि और कुछ न होगा तो कम से कम बड़े-बड़े गम्भीर भाषणों को सुनने के बाद आप का थोड़ा सा मनोविनोद हो जायेगा।

कुशल पत्र दूंगा, पाऊंगा अब के आशा थी ऐसी,
किंतु अड़ी है डाक डाकिनी अब भी वैसी की वैसी।
सरस्वती ने सोचा, अब फिर भारत में चल करूं विहार,
सहमा हंस, परन्तु, बीच का निर्जल वातावरण निहार।
बोला वह : मां ! एक डाक ही कर सकती है मरू-पथ पार,
पर भाड़े की जटिल समस्या सुलझ न पायी किसी प्रकार।
कहते हैं कुछ ही वर्षों में दुगुनी होगी अपनी आय,
इसका क्या विश्वास, चौगुना हो न जायगा कर समुदाय।
छूटे पान, सुपारी भी अब सुलभ नहीं, ले ली खा ली,
फिर भी प्रभु से यही विनय है, रहे देशमुख की लाली।[1]

11 मार्च 1955 को बजट पर बोलते हुए उन्होंने कागज तथा डाक पर बढ़ाये हुए करों का जोरदार ढंग से विरोध किया। श्री देशमुख के पांडित्य की प्रशंसा करते हुए उन्होंने काव्यमय निवेदन किया —

श्रीमन्, गत वर्ष की भांति इस बार भी मुझे माननीय वित्त मंत्री से कुछ निवेदन करने का जो अवसर दिया गया है, उसके लिये मैं आभार प्रकट करता हूं।

हमारे मंत्री महोदय केवल बाहरी अर्थों के ज्ञाता नहीं हैं, वे भीतरी अर्थों के भी ज्ञाता हैं। वे कवि भी हैं, कोविद भी। उनसे किसी अनर्थ की कभी कोई आशा हो सकती है, इस बात को कौन स्वीकार करेगा? फिर भी सुकुमार बच्चों को भी दूध पाने के लिये कभी-कभी आंसुओं का मूल्य देना पड़ता है। मैं अपना निवेदन हंस कर ही उपस्थित करूंगा।

पहला पद्य है —

आय और व्यय के लेखे की लिपि सदैव काली काली,
जली हमारे घर होली तो, अभी दूर है दीवाली।
विनय पत्रि का लिखने में भी अब तो बाधा आई है,
कागज का जो मूल्य बढ़ा है इसकी किसे बधाई है।
आड़े रहे डाक के भाड़े ग्रन्थों का गतिरोध वही,
बची रेल से कटती कटती शिक्षा का सौभाग्य यही।
अविवाहित यदि विवश हो गये विवाहितों की सुविधा से,
तो कुमारियां बच जायेंगी वर पाने की दुविधा से।
अर्थ सरल, लिपि कुटिल, कठिन है, क्या देखें अपना लेखा,
आप, हमीं पलटें तो पलटें अपने कर्मों की रेखा।
खुला इधर यह कच्चा चिट्ठा, घुला उधर होली का रंग,
जो होना होगा सो होगा, न हो आज अपना रस भंग।

अंत में एक आर्या सुनिए —

चिंतामणि जो चाहे भरसक हम सब उसे वही बलि देंगे,
पर क्या उसे पता है, आगे अपना अभीष्ट किससे लेंगे। [2]

प्रतिवर्ष बजट में सम्मिलित होते नए-नए कर श्री मैथिलीशरण गुप्त के पद्य भाषणों में उलाहना व आक्षेप का एक प्रमुख विषय बन गए थे। चाय निर्यात कर, डाक-कर, पंजीकरण शुल्क, और नए वस्त्र-कर आदि पर टिप्पणी करते हुए उनकी प्रखर काव्य-शैली किस प्रकार व्यंग्यात्मक हो उठी थी, इसका उदाहरण है प्रस्तुत रचना जो उन्होंने 6 मार्च 1956 को सुनाई थी —

पूज्य सभापति महोदय, मैं आभारी हूं कि विगत वर्षों के समान इस वर्ष भी आप की आज्ञा पाकर माननीय वित्त मंत्री को उनके कार्य के लिये धन्यवाद दे सकूं। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट कर सकूं, क्षमा-याचना पूर्वक उन्हें कुछ उलाहना भी दे सकूं और उनके सम्मुख एक आध सुझाव भी रख सकूं।

इस चेष्टा से और कुछ हो या न हो, उनकी एक नई पद्य रचना ही सुनने को मिल गई तो मेरे लिये वही बहुत होगी। मैं चाय पी कर आया हूं, अतएव उसी के निर्यात-कर से आरम्भ करना चाहता हूं —

धन्यवाद है धन-मंत्री को करे चाय सुख से प्रस्थान।
हम सब पानी ही पी लेंगे किन्तु खान पहले फिर पान।।
मिटे मद्य-कर लोभ आप का अधिक आय का वह अभिशाप।
दे दे कर मद-मोह स्वयं ही फिर प्रबोध देते हैं आप।।
कर लेते हैं आप, आपके गण लेते हैं धनयुत मान।
थाने क्या निज न्यायालय ही जा कर देखें दयानिधान।।
खोलें एक विभाग आप तो यह घर्षण हो जावे ध्वस्त।
जांच करे अधिकारी वर्ग की गुप्त भाव से वह विश्वस्त।।
पहले ही था कठिन डाक से ग्रन्थों द्वारा ज्ञान-प्रसार।
पंजीकरण शुल्क बढ़ाकर अब रोक न दे विद्या का द्वार।।
किन्तु, नहीं पोथी की विद्या पर कर गत धन-सी अनुदार।
साधु-साधु ! श्रुति परम्परा का आप कर रहे हैं उद्धार।।
सुनते थे उन्नत देशों में कुछ जन नंगे रहते हैं।
स्वस्थ तथा स्वाभाविक जीवन वे इस को ही कहते हैं।।
नया वस्त्र कर, देता है यदि आज यही संकेत हमें।
तो हम कृतज्ञाता पूर्वक ही उसे किसी विध सहते हैं।।

मक्खन लीजे, छाछ छोड़िये देश भक्ति यह सह लेगी।
पारण बिना, किन्तु जनता क्या व्रत करके ही रह लेगी?
यह यथार्थ है, यत्न आप के हैं हम लोगों के ही अर्थ।
आह-कराह न उठने दे जो, शल्य वैद्य है वही समर्थ।।
लोगों को चिन्ता थी, आगे जीवन पर भी कर न लगे।
मरकर भी कर, जीकर भी कर, डरकर कोई कहां भगे।।
एक जन्म-कर ही ऐसा है, जिस पर कुछ-कुछ प्यार पगे।
और नहीं तो जनसंख्या ही संभले, संयम भाव जगे।।[3]

श्री देशमुख के वित्त मंत्री पद से हटने के बाद मैथिलीशरण जी का बजट पर भाषणों का यह क्रम टूट सा गया। परन्तु 11 मार्च 1958 को जब प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने बजट प्रस्तुत किया तब श्री गुप्त ने अपनी काव्यात्मक शैली में देश की आर्थिक स्थिति व बढ़ते हुए करों के संबंध में असंतोष प्रकट करते हुए अपने विचार एक बार फिर सदन के सम्मुख रखे। कुछ ही दिन पूर्व मौलाना आजाद की मृत्यु हो गई थी जिसका जिक्र भी उनकी प्रस्तुत रचना में हुआ है —

आय कठिन, व्यय सहज, मिलेगा क्या दोनों का मेल कभी,
सहनी पड़ी हमें धन से भी बड़ी एक जन-हानि अभी।
क्रान्तिजयी विक्रान्त हमारे मौलाना चिरशान्त हुये,
निर्मल जीवन-नाट्य पूर्ण कर कीर्ति छोड़ निष्क्रान्त हुये।
वह अक्लान्त काल क्या जाने हम ये कितने श्रान्त हुये,
चले बिना गति नहीं किन्तु दुर्गति है, यदि दिग्भ्रान्त हुये।
जैसे भी हो सके लक्ष्य तक हमको जाना ही होगा,
लय संभाल स्वर ताल साधकर सम पर आना ही होगा।
चले गये सो मुक्त हो गये हम स्वतंत्र ही बने रहें,
उनकी थाती लेकर छाती देकर जो आ पड़े सहें।
मातायें हैं तो वैसे जन फिर जनकर देंगी हमको,
देते चलें चुनौती हम इस असम विषम को, उस यम को।
हम में हैं मतभेद बहुत कुछ किंतु एक मत सब इसमें,
ऐसा हो निज-पर का सबका योगाक्षेम सधे जिसमें।
इतना ही क्या अल्प, अंत में यहां एक ही सबका लक्ष,
वहां प्रमाद सहज संभव है, जहां न हो कोई पर-पक्ष।

सच्ची निर्णायक जनता है, वह सब की सुन लेती है,
फिर गुनकर जब जिसे चाहती निज नेता चुन लेती है।
सुनती है वह मेनन को भी, अब्दुला मृदुला को भी,
अचरज है सुनने का कैसे उसका मन ऐसा लोभी।
और अधिक अचरज जो नेता हैं अपने माथे के मौर,
कल जिस मुख से कुछ कहते थे, आज उसी मुख से कुछ और।
'वृद्धास्ते न विचारणीय' यह कवि ने क्या ही ठीक कहा,
राष्ट्रपिता से राजाजी का किंतु कहां समधीत्व रहा।
साधन हमें जुटाना ही है देकर कर किंवा बलिदान,
पर, धन का उपयोग उचित हो रहे आपका पूरा ध्यान।
सफल योजनायें हों अपनी तो हम सब भर पावेंगे,
किन्तु जहां धन वहां चोर भी अपनी घात लगावेंगे।
हम तब भी संतोष करेंगे, हमने जो कुछ प्राप्त किया,
पूरे से भी अधिक मूल्य है उसका पहले चुका दिया।
अपने रवि ठाकुर का कहना कितना समाधानमय है,
पृथिवी के पा लेने पर जो बचता वही जलाशय है।
बहु प्रत्यक्ष परोक्ष करों ने हमें घेर रक्खा है आज,
यह अपने भावी हित में है तो सह लेगा इसे समाज।
किन्तु देश में फले हैं जो रक्तबीज से भ्रष्टाचार,
कहां रहेगी शासन सत्ता यदि न हुआ उनका प्रतिकार।।[4]

उनके इस कविता पाठ के बाद श्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि मैं कवि को क्या उत्तर दूं। मुझे तो जो कुछ कहना है वह बहुत ही शुष्क एवं रसहीन है।*

एक बार रेलवे बजट के संदर्भ में बोलते हुए श्री गुप्त ने रेल यात्रियों की दुर्दशा व कठिनाइयों का एक बहुत ही वास्तविक एवं ध्यानाकर्षक काव्यचित्र खींचा था। 1 मार्च 1956 को सदन में उन्होंने कहा —

सभापति महोदय, मैं जो कुछ निवेदन कर रहा हूं उसके पहले मैं यह कह देना चाहता हूं कि माननीय रेल मंत्री के संबंध में मैं भली-भांति जानता हूं कि वे हमारे

---

*Prime Minister Shri Jawaharlal Nehru said:
"It is a little difficult to follow a poet and what I have to say, I fear, is very prosaic.

हित के लिए जो भी संभव हो, करते रहे हैं, करते हैं और करते रहेंगे। मैं छोटा सा अपना एक अनुभव मात्र सुनाता हूं और वह इसलिये नहीं कि मैं हाउस की सहानुभूति प्राप्त कर लूं। मैं तो यही आशा करता हूं कि हाउस का थोड़ा सा मनोरंजन उससे हो जाय।

घटना 30 दिसम्बर की है। मैं प्रात: काल पंजाब मेल से झांसी जा रहा था और दुर्भाग्य से स्टेशन पर पहुंचते-पहुंचते गाड़ी छूट गई। उस दिन ''जनता'' गाड़ी भी जाती थी, सोचा उसी से चलें। मैं था और मेरे अनेक कुटुम्बीजन भी थे। हम लोग ''जनता'' में बैठ तो गये, परंतु बैठने के बाद जो कुछ हुआ वही मैं आपसे एक पद्य में निवेदन करना चाहता हूं —

वंचित हो डाक से, कुटुम्ब युत घंटों बैठ,
'जनता' से जाने की प्रतीक्षा करता रहा।
भीड़ की क्या बात कहूं यात्रि यों का तांता बढ़,
चढ़, चढ़ निज काल कोठरी सी भरता रहा।
गेंद बल्ले बन के बिछौने और ट्रंक चले,
सम्मुख कपाल क्रिया देख डरता रहा।
झांसी में न जाने किस भांति जीता उतरा मैं,
दिल्ली से चला तो मार्ग भर मरता रहा।[5]

बजट के अतिरिक्त अनेक अन्य महत्वपूर्ण सामयिक विषयों पर मैथिलीशरण गुप्त के ओजस्वी विचारों को संसद में सुनाई गईं उनकी रचनाओं में सहज ही देखा जा सकता है। राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट पर हुई चर्चा से वह क्षुब्ध हो उठे थे। भाषाई आधार पर राज्यों के वर्गीकरण का उन्होंने तीखी भाषा में प्रतिकार किया। 22 दिसम्बर 1955 को इस विषय में अपनी भावना व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा —

उपसभापति महोदय, राज्य पुनर्गठन आयोग के संबंध में मैंने यही समझा था कि यह एक रचनात्मक कार्य है जो राजकाज की दृष्टि से किया जा रहा है। परंतु उसके संबंध की प्रतिक्रियाओं को पढ़कर मुझे विस्मय भी हुआ और खेद भी हुआ। काका गाडगिल जैसे माननीय मनीषियों के भाषण सुनकर तो नहीं पढ़कर मेरे मन में भी एक छोटी सी प्रतिक्रिया हुई। वह प्रतिक्रिया इस प्रकार हुई कि क्यों न मैंने भी अपनी बुंदेली बोली के

बल पर सागर, जबलपुर और लश्कर, ग्वालियर की मांग की। कमीशन के एक माननीय सदस्य की मुझ पर कृपा भी है और मैं उनसे बहुत दिनों से परिचित हूं, यह भी मेरे लिए एक आसरे की बात थी, परंतु कठिनाई यही है कि हरी जी (डा॰ हृदय नाथ कुंजरू) न महौबे के पान के बीड़ों से फुसलाये जा सकते थे और न पन्ना के हीरों से। जो भी हो, मेरी प्रतिक्रिया तो नहीं थी परंतु औरों की प्रतिक्रिया देखकर मेरे मन में जो प्रतिक्रिया हुई है उसे मैंने कुछ शब्दों में प्रकट किया है और उसे मैं आपके सामने निवेदन करता हूं —

अपना सीमायोग बुरा बन गया भला कर,
करने बैठा होम उठा वह हाथ जला कर।
सहसा सीमित हुआ हमीं में देश हमारा,
कुंचित होगी क्यों न संकुचित मन की धारा।
क्रोध कम्प किस हेतु जहां थी वहीं धरा है,
यों कोई कुछ कहे, कहां से कटा मरा है?
अब तक तो है कुशल, राम जाने आगे की,
मान रहे सब भली लंगोटी ही भागे की।
अहा ! पुरानी बात आज फिर नई हुई है,
दिल्ली नहीं, परंतु दूर बम्बई हुई है।
काका को कल नहीं, विकल मन में हलचल है,
फिर भी उनको शास्त्र -शस्त्र दोनों का बल है।
काका न सही, आज काक ही मैं हो पाता,
तो लश्कर तो कांव-कांव कर पा ही जाता ।
एक ओर तो विश्व बन्धुता की वे बातें,
उठी दूसरी ओर घहर घर में ही घातें ।
कलकत्ते की कथा और भी नई निराली,
बंग-भंग की पूर्ति करें क्योंकर बंगाली?
उन्हें राज्य पद मिलें, राज- भाषा में क्या है,
कह, बिहार! तेरी उदार आशा में क्या है?
हंसती जब जब कली,ओस निश्चय ही रोती,
यदि उसमें ईर्ष्यालु मनुज की सी मति होती।

वह तो गद्‌गद हुई प्यार से सुध-बुध खोती,
वार रही है बार-बार उस पर निज मोती।
सिक्खों की क्या कहूं, सदैव कृपाण धरे हैं,
पर अब भी पंजाब प्रान्त के घाव हरे हैं।
एक बार बंट चुका उसे अब और न बांटो,
अपने हाथों आप अंग अपने मत छांटो।
चिर विनयी वह विन्ध्य धरा में ही धंस जाता,
तो अपने में आप मगन होकर हंस जाता।
हम पर हंसते वही,हंसाते थे जो हमको,
समतावादी बुला रहे हैं स्वयं विषम को।
था वसुधैव कुटुम्ब रूप में जिनका वानक,
निज ही पर हो गये अंत में उन्हें अचानक।
सबके मन में आज भरी है भारी दुविधा,
अपनी सुविधा रहे, बहे शासन की सुविधा।
बने जहां के तहां ग्राम, गृह क्षेत्र हमारे,
किन्तु न जाने घूर रहे क्या नेत्र हमारे।
भारतीय क्या यथापूर्व हम नहीं रहेंगे,
कितने पाकिस्तान यहां अब और सहेंगे?
अबलों में भी है असह्मय आपस की धमकी,
देकर लेनी पड़ी चुनौती किसे न यम की?
बन्धु वैर की नहीं, प्रेम की लूट फलेगी,
बहुत चल चुकी, और नहीं अब फूट चलेगी।
बहु-भाषी हम अलग, अलग पर अड़ जावेंगे,
तो सब से कट आप अकेले पड़ जावेंगे।
बंधे नीर से सड़ें स्वार्थ में सनें-सनें हम,
वा प्रयाग के मिलन तीर्थ से बड़े बनें हम।[6]

1 मई 1962 को 'राष्ट्रपति को धन्यवाद प्रस्ताव' पर बोलते हुए उन्होंने जो सारगर्भित पंक्तियां सुनाईं थीं उनमें निहित थे सांसद् कवि के वह विचार जो तत्कालीन भारतीय राजनीति व समाज का बिंब प्रस्तुत करते थे। उन्हीं दिनों राष्ट्रपति डा॰ राजेन्द्र प्रसाद अवकाश ग्रहण करने वाले थे । मैथिलीशरण गुप्त की इस रचना में डा॰ राजेन्द्र प्रसाद के प्रति सम्मान, अवकाश ग्रहण करने वाले सदस्यों के लिए शुभकामनाएं व नवागत सदस्यों के प्रति स्वागत के भाव, सभी मानो एक

ही गागर में समाए हुए थे। अपनी अस्वस्थता के बावजूद उन्होंने निम्नलिखित पद्य सदन में प्रस्तुत किया था —

गये सदस्यों का शुभपथ हो, स्वागत नवागतों का है,
लक्ष्य एक निज मातृभूमि का, मंगल सकल मतों का है।
मिली पुनर्नवता सत्ता को उसे भार यह लेना है,
लेकर एक सहस्र गुना कर सब के हित में देना है।
भली योजनायें कितनी ही चलीं और चल रहीं बड़ी,
किन्तु राष्ट्र भाषा तपस्विनी यहां जहां थी वहीं पड़ी।
बिना एक व्यापक वाणी के एक राष्ट्र की सत्ता क्या,
किसी देश में निजता का पद पाती है परवत्ता क्या?
करते रहे सदन सम्बोधन प्रथम राष्ट्रपति हिन्दी में,
बह न जाय यह परम्परा भी दिल्ली की कालिन्दी में।
अधिक रेल भाड़ा देकर लो, आ पहुंचा लेखा-जोखा,
लेगा वह जितना लेना है, देना है, हमको चोखा,
शासन सब हैं बिना हृदय के पड़े पदों पर पलते हैं,
चलते नहीं परन्तु पदों से, सदा करों से चलते हैं ।
कर क्या , सिर देने में भी है, अहोभाग्य अपनों के अर्थ,
पर कब तक घर घाल हमारा किया करेगी घूंस अनर्थ?
यही सोच कर समाश्वस्त हों क्या करदाताओं के चित्त,
बने हमारे बड़े बांध तो, बहा क्यों न यों ही बहुवित्त।
राज्य धर्म निरपेक्ष हमारा, प्रजा विवशता की मारी,
फंसती है पर धर्म चक्र में, फिर भू भंग न हो भारी।
रहे हमें यह ध्यान अन्त में, हम ऋण लेकर घी न पियें,
रख कर अपनी साख हमारी आगे की पीढ़ियां जियें।
लोक राज्य राजेन्द्र हमारे भारत के मन के आदर्श,
देते रहें निवृत हुये भी शुभ दर्शन का पुण्य स्पर्श।
लिया नहीं जो कभी उन्होंने लें वे अब वह सुख विश्राम,
उनके गौरव से नत सादर करते हैं हम उन्हें प्रणाम।[7]

सन् 1962 भारत के लिये एक संकटपूर्ण वर्ष था। चीन द्वारा भारत पर आक्रमण कर दिये जाने के कारण आपातकालीन स्थिति की घोषणा कर दी गई थी। इस अवसर

पर श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 9 नवम्बर 1962 को सदन में 'विजय पर्व' नामक रचना सुनाई जो उनकी प्रमुखतम रचनाओं में से एक है। यह रचना इस प्रकार है —

ऋषि दधीचि से गांधी जी तक मिली हमें जो दीक्षा है,
बन्धु जनो, प्रस्तुत हो, उसकी फिर आ गई परीक्षा है।
फिर सब देखें कठिन नहीं निज तपस्-त्याग बलिदान हमें,
परम्परा से पाया अपना रखना है सम्मान हमें।
घर संभालने में, तटस्थ हो लगे हुए थे जब हम लोग,
और चाहते थे जब सबका पंचशील-सम्मत सहयोग।
तभी पड़ोसी चीन अचानक होकर लोभ - पाप में लीन,
चला हमारी भूमि छीनने तन का मोटा, मन का हीन।
हम निर्माण - निरत थे, नाशक अणुबम नहीं बनाते थे,
अपने साथ दूसरों की भी शान्ति - समृद्धि मनाते थे।
आक्रामक हो कर ऐसे में आ कर जो हम से अटके,
उठो, लगा दो उन्हें ठिकाने वे मदान्ध भूले - भटके।
शताब्दियों के पहले हम ने जिन्हें धर्म - शिक्षा दी थी,
विनिमय में धन - धरा न ली थी मात्र साधु-भिक्षा ली थी।
आध्यात्मिकता से हट कर वे नंगी भौतिकता में चूर,
हिंस्र-दृष्टि से गुरुकुल को ही घूर रहे हैं कायर क्रूर।
राष्ट्र- संघ में शुद्ध- भाव से हम ने जिन का पक्ष लिया,
हमें उसी के लिये उन्होंने देखो क्या उपहार दिया।
उनकी यह दी हुई चुनौती हम क्या अस्वीकार करें,
कोई हम पर वार करे तो हम भी क्यों न प्रहार करें।
ठोकर मार चिता दो उन को देख रहे हैं जो सपने,
भूले नहीं प्रताप, शिवाजी, गुरूगोविन्द हमें अपने।
आये जो जय-पत्र लिखाने मृत्यु-पत्र लिख रक्खें वे,
लोहे के हैं चने हमारे चखना है तो चक्खें वे।
अपने आप आ गया है यह नई विजय पाने का पर्व,
न था कौरवों को क्या, यदि है उन को बहु संख्या का गर्व।
चर लें भले टिड्डियां उड़ कर इधर उधर कुछ हरियाली,
पर जीते जी कहीं लौट कर वे हैं फिर जाने वाली?
दांतों में तृण धरें ढीट जो पागल पशु से आ टूटे,
पंजे यहां चलावें जब तक पावें निज छक्के छूटे।

पुरुखों की खाई अफीम की पीनक छाई है जिनमें,
क्यों न तोड़ने चलें मलिन वे निकट देख तारे दिन में।
कृष्णा-गोदावरी-पंचनद, गंगा-यमुना उमड़ीं आज,
किन्तु एक चुल्लू यथेष्ठ है यदि है रिपुओं को कुछ लाज।
मार्ग न रहने दो जाने का ऐसे आने वालों को,
मुंह की खानी हो, उन मन के मोदक खाने वालों को।
काल कठिन तो दृढ़ हैं हम भी स्थैर्य धैर्य साहस के संग,
आज वृद्ध भी युवा बने हैं पाकर निज में नई उमंग।
मातृ भूमि की रक्षा में हम सिर भी सहज कटा देंगे,
भू-दानी हैं, रहो लुटेरो, तुमको धूल चटा देंगे।
ऐसे आंख दिखाने से क्या हो सकती है ऊंची नाक?
पहले अपने को तो देखो पीछे यहां जमाना धाक।
कब के प्रतिवासी होकर भी जान न पाये तुम हम को,
पाप-पुण्य जो नहीं मानते मानो अब अपने यम को।
हमें किसी का कुछ न चाहिए, हम अपना भी छोड़ें क्यों,
बिना बुलाया संकट आया उससे भी मुंह मोड़ें क्यों?
अटल रहे विश्वास हमारा सत्य धर्म पर हम आरूढ़,
आज नहीं तो कल लोलुप खल होंगे किंकर्तव्य-विमूढ़।
घर के सांप पंचमार्गी हैं बाहर के रिपु से भी घोर,
आपस के मत-भेद भूलकर सजग रहें सब दोनों ओर।
हिंदू, जैन, बौद्ध वा सिख हैं मुसलमान या ईसाई,
अपने एक देश के नाते हम सब हैं भाई-भाई।
सावधान! साधन-सामग्री टूट न पावे आज कहीं,
तब है, एक दूसरे से जब कहला लें अब और नहीं।
उत्पादन का हर्ष जहां हो वहां अधिक श्रम का क्या खेद,
रक्त दे रहे सुभट हमारे हमें बहुत क्या अपना स्वेद।
बढ़ते हुए हमारे सैनिक पिछड़ा हमें न पावेंगे,
जो स्वदेश पर बलि जाते हैं हम उन पर बलि जावेंगे।
धन तो तन का मैल, किसे है आज स्वयं प्राणों का मोह,
गूंजे जीवन-गान एक रस क्या आरोह और अवरोह।
बाहर के बल का पूरक है सच्चा भीतर का बल ही,
शस्त्रों का कहना ही क्या, लड़ चुके निहत्थे हम कल ही।

भौतिक भूत नहीं कर सकता हमको अपने भय से युक्त,
जीते जी स्वाधीन रहेंगे मर कर भी होंगे हम मुक्त।
अपने आप लिया रिपुओं ने न्याय बुद्धि का यह अभिशाप,
यही बहुत, बैरी बन आया कटने को यह अपना पाप।
बलि देकर ही बल लेंगे हम भीम-भामिनी भीमा से,
जो पर हैं, वे रहें परे ही हटें हमारी सीमा से।[8]

जैसा कि कहा जा चुका है, श्री मैथिलीशरण गुप्त बजट के ऊपर प्राय: ही अपने विचार प्रस्तुत करते रहे। श्री देशमुख जी के वित्त मंत्रित्व काल में यह नियमितता अधिक थी, शनै: शनै: उनका यह क्रम टूटता चला गया। परन्तु एक लम्बे अंतराल के बाद 7 मार्च 1963 को श्री गुप्त के बजट विषयक विचार एक बार फिर उनकी प्रस्तुत रचना के रूप में प्रस्फुटित हुए।

उन्होंने कहा —

ऐसे अवसर पर मैं सदन में कुछ पद्य सुनाता रहा हूं। आज भी मुझे आपने इसका अवसर दिया है इसके लिये मैं हृदय से कृतज्ञ हूं। मैं अस्वस्थ हूं, फिर भी मैंने कुछ पंक्तियां लिखी हैं। वे इस प्रकार हैं —

करते थे कुछ मित्र बजट की बातें ऐसे,
देख रहे हों एक भयानक सपना जैसे।
मुझको सीमा प्रान्त दीख पड़ता था अपना,
अरे व्यर्थ है, आज विलपना और कलपना।
है इसका दायित्व अन्त में उस संकट पर,
जिसका प्रकट प्रभाव पड़ा इस विकट बजट पर।
पहले उसका अन्त करो तन-मन-धन देकर,
रक्खो अपना मान विजय का बेड़ा खे कर।
बाधा जो आ पड़ी हमीं को सहना है,
रहे हमारी भूमि हमें जिस पर रहना है।
समझे शासक वर्ग उसी की है अब बारी,
पाई-पाई गिने रक्त की बूंद हमारी।
हुआ न वह सम-भक्त हमारा सच्चा साथी,
तो निश्चय ही बैठ जायेगा उसका हाथी।

हम सब को इस अनाहूत भय से बचना है,
तो उसको भी आप अपव्यय से बचना है।
मिला ताम्र से स्वर्ण, दूध जैसे पानी से,
घी बन बैठा तेल वनस्पति की घानी से।
किन्तु भिन्न दो भाव खिन्नता सी उपजाते,
दो प्रवाह मिल सदा तीर्थ ही नहीं बनाते।
कर बांधो, पर सावधान! न रुके उत्पादन,
एक साध्य के अर्थ अपेक्षित सौ-सौ साधन।
विजय-यज्ञ में कौन न आहुति-दान करेगा,
ग्रास-त्याग कर भी न देश का त्रास हरेगा?
हों कितनी ही बड़ी क्यों न अंकों की लड़ियां,
जुड़ें हमारी पुण्यभूमि की टूटी कड़ियां।
निज निसर्ग है सत्य-अहिंसा ही आचरता,
हिंसा से भी किन्तु अधिक कुत्सित कायरता।[9]

हिन्दी भाषा को उचित स्थान प्राप्त कराने हेतु वह सदा तत्पर रहे। सदन में बोली गई उनकी रचनाओं में प्राय: इस संबंध में उनके विचार व्यक्त हुए हैं। श्री मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी भारत में अंग्रेजी भाषा का स्थायित्व व बढ़ता हुआ प्रभाव था। 4 मई 1963 को सदन में जब राज भाषा विधेयक पर चर्चा हो रही थी तब अंग्रेजी भाषा को समर्थन दिये जाने पर वह आहत हो उठे थे। इसका प्रमाण था उनकी तीखी प्रतिक्रिया जो उन्होंने सदन में व्यक्त की थी। उस समय वह बहुत अस्वस्थ थे परन्तु फिर भी वह सदा की भांति सदन में उपस्थित थे। उनकी अशक्तता को देखते हुए सभापति ने उन्हें बैठ कर बोलने की अनुमति प्रदान की थी। प्रस्तुत रचना उनके हिन्दी प्रेम को भली-भांति उजागर करती है। यह भी स्पष्ट है कि उनका यह हिन्दी प्रेम संकीर्ण व सीमाबद्ध नहीं था, वह सभी प्रान्तीय भाषाओं के उत्थान के पक्षधर थे और यह भाव भी इस रचना में स्पष्ट हुआ है —

अंग्रेजी के पक्षपातियो, लो अंग्रेजी बनी रही,
आप माननीयों के मन में, जो अभीष्ट था, हुआ वही।
अपने ऐसे मतवालों के साथ, पाइये सुख सन्तोष,
अवश आज हम हिन्दी भाषी, न दें देव को भी क्या दोष।

क्या स्वदेश का ऐक्य हमीं पर, नहीं आप पर कुछ दायित्व?
क्षमा कीजिये, तो फिर कैसे आवेगा उसमें स्थायित्व?
वह देशात्मभाव क्या, जिससे करे विदेशी भाषा होड़,
लोकतंत्र वह क्या, नगण्य हों जहां बीस-बाईस करोड़?
जय शंकराचार्य, रामानुज, जय चैतन्य, राममोहन,
इसी धरा की कामधेनु से किया जिन्होंने दिव-दोहन।
आप उन्हीं की पुण्य-भूमि के जात हमारे चिर श्रद्धेय,
विंध्य-हिमालय, गंगा-यमुना, राम-कृष्ण ही हैं निज देय।
व्यापक हुई हमारी हिन्दी तो क्यों उस पर यों आक्रोश?
स्वयं आपकी भी है वह तो लेकर अपना धन-जन-कोश।
प्राप्त राष्ट्रभाषा के नाते उसका आप और सबसे,
स्वल्प पदों के पीछे फिर भी रही उपेक्षित वह कब से।
शासन करें आप थोड़े से हम बहुतों पर जी भर के,
वाट हृदय-परिवर्तन की हम हेरेंगे धीरज धर के।
भावुक हों अथवा बौद्धिक हों किन्तु जान रक्खें यह आप,
अपने अनौचित्य पर सबको करना पड़ता है अनुताप।
पाया है हमने स्वराज्य, पर क्या स्वबोध हमें आया?
हम परावलम्बी हैं अब भी, ग्रहण गया, न गई छाया।
हो सकता है भला और क्या किसी अर्थ का यहां अनर्थ,
जाना था जिस अंग्रेजी को वह आ गई सदा के अर्थ।
हम स्वदेश में भी विदेश की अनुकृति के अभिलाषी हैं,
अपनों के द्रोही निर्मोही पर-भावक पर-भाषी हैं।
कैसे हम स्वाधीन हो गए, स्वयं हमीं को विस्मय है,
एक महामानव ही आकर दिला गया हमको जय है।
अंग्रेजों से बचा लिया है बापू ने धीरज के साथ,
हंत न बिकना पड़े अंत में हमको अंग्रेजी के हाथ।
जो कर देना नहीं चाहते उनको भी देना पड़ता,
तो हिन्दी के लिए उचित है क्या विधान की यह जड़ता।
निज विधि पूरी करवाने में शासन करता नहीं प्रमाद,
एकमात्र हिन्दी ही उसका सिद्ध हो रही है अपवाद।
भाव उसी का नहीं, देश की सब भाषाओं का यह भंग,
फूल और फल सकती है वह अपनी बहनों के ही संग।

सच तो यह है यहां देश का बंदर बांट उन्हीं को इष्ट,
तुच्छ स्वार्थवश हिन्दी के प्रति जो हैं असहनशील अशिष्ट।
मन का नहीं, मान का है यह प्रश्न हमारे लिए प्रधान,
स्वयं विधान बना कर उससे मुकर जायें हम हा भगवान।
दे न सके विश्वास हमें जो क्या है उसका आश्वासन,
पहले स्वयं प्रतिश्रुति देकर अप्रस्तुत है अब शासन।
हिन्दी का उद्देश्य यही है भारत एक रहे 'अविभाज्य',
यों तो रूस और अमरीका जितना है उसका जन-राज्य।
बिना राष्ट्र-भाषा स्वराष्ट्र को गिरा आप गूंगी असमर्थ,
एक भारती बिना हमारी भारतीयता का क्या अर्थ।
अंग्रेजी को रखने का जो किया गया है श्रम इतना,
उससे हिन्दी के विकास का कार्य न हो जाता कितना।
न की दूर से भी हिन्दी से पर-शासन ने सीधे बात,
निज शासन ने निकट बुला कर किया आज उस पर आघात।
हो वा न हो राजभाषा पर वही प्रजा की वाणी है,
वही राष्ट्र की अर्थ वाहिनी जन-जन की कल्याणी है।
पर-भाषा से द्वेष करेगा भला कौन निज भाषा-भक्त,
मातृ रूपिणी सबकी वाणी वह अशक्त वा रहे सशक्त।
किन्तु विमाता बन विदेश की कोई माता आवेगी,
तो वह यहां पूतना की गति आप अंत में पावेगी।
ऐसे में चुप रहते कैसे, एन्थोनी-से वीर विशाल,
मिली ओढ़ने को उनको ही ब्रिटिश सिंह की सूखी खाल।
हिन्दी को भय नहीं किसी का मैंने अपनी व्यथा कही,
मैं मत देने में स्वतंत्र हूं मुझे एक संतोष यही।[10]

13 मार्च 1964 को श्री मैथिलीशरण गुप्त ने सदन में अपनी अंतिम रचना सुनाई थी। राज्य सभा में उनका लम्बा कार्यकाल पूरा हुआ था। अवकाश ग्रहण करने वाले अन्य सदस्यों की भावनाओं से सम्बद्ध होते हुए श्री गुप्त ने यह भावपूर्ण रचना सुनाई थी —

शेष यहीं तक नहीं बन्धुजन! कार्य हमारा,
आगे बढ़ती चले सदा जीवन की धारा।
जाते हैं हम यहां सुखद सम्बन्ध जोड़ कर,
अपने आसन नवागतों के लिये छोड़कर।

हम जो साध न सके उसे वे सिद्ध करेंगे,
बढ़ दृढ़ता से विजय-लक्ष्य निज विद्ध करेंगे।
नव-नव अनुभव हमें दे चली अवधि हमारी,
अंगरेजी ही रही यहां निरवधि, बलिहारी!
इतने दिन हम यहां साथ रहते आये हैं,
कर कितने संताप हंसे, खेले खाये हैं।
उन बातों का स्मरण क्यों न हम सब को साले,
बैठे फिर भी मौन कौन कर्तव्य न पाले।
भूलें हम से हुई न होंगी कैसी कैसी,
पर क्या वैसी, क्षमा आप लोगों की जैसी?
मांग-मांग कर लोग बहुत कुछ पा लेते हैं,
किन्तु बड़े तो क्षमा बिना मांगे देते हैं।
तात, आज भी एक बात के हम अधिकारी,
बने आपकी दया उलट कर याद हमारी।"

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने एक सांसद के रूप में सदा अपने दायित्व का निर्वहन किया, साथ ही कवि के रूप में भी अपने कर्म की सार्थकता को उन्होंने प्रमाणित किया। उन्होंने स्वयं लिखा था —

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए,
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।

वह केवल एक कल्पनाशील कवि ही नहीं थे वरन् यथार्थ के धरातल पर खड़े एक जागरूक भारतीय भी थे। सदन में उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों पर अपने बेबाक और सुलझे हुए विचार सदा पद्यमय भाषा में सीमित व सटीक शब्दों में व्यक्त किये थे। राजनीति के शुष्क मरूस्थल पर उन्होंने साहित्य की मंदाकिनी प्रवाहित की थी। दिल्ली वास के बारह वर्षों में उनका आवास सदा ही सांस्कृतिक-साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र बना रहा। वह जन भावनाओं के सच्चे प्रतिनिधि थे। सदन में सुनाई गई उनकी रचनाओं को पढ़ कर लगता है मानों आज के संदर्भ में भी वे उतनी ही सार्थक हैं —

एक बार बंट चुका उसे अब और न बांटो,
अपने हाथों आप अंग अपने मत छांटो।

वर्षों पूर्व सदन में बोली गई उपर्युक्त पंक्तियां विखंडनवादी तत्वों से आज भी समन्वय का निवेदन कर रही हैं। उन्होंने सदैव विषमताओं के निवारण के प्रयास किए।

संकीर्ण मतभेदों से ऊपर उठ कर विराट, कल्याणमय एकत्व की ओर बढ़ने का आह्वान किया। उन्होंने कहा था —

हम में हैं मतभेद बहुत कुछ किन्तु एकमत सब इसमें,
ऐसा हो, निज-पर का—सबका योगाक्षेम सधे जिसमें।

जन-जन को प्रेरणा देने वाले विलक्षण राष्ट्रकवि एवं सांसद श्री मैथिलीशरण गुप्त का 12 दिसम्बर 1964 को देहावसान हो गया। 14 दिसंबर को सदन में श्री मैथिलीशरण गुप्त को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए सभापति महोदय ने राज्य सभा में उनके योगदान की चर्चा की।* वे सदन में साहित्य के एक प्रमुख एवं लब्धप्रतिष्ठ प्रतिनिधि थे। भावी पीढ़ी उनके अमर काव्य की गौरवान्वित उत्तराधिकारिणी है। अनेक प्रकार के सम्मान व सफलताएं प्राप्त करने के बाद भी श्री गुप्त को अभिमान छू तक न गया था। वह सादे, सरल व विनीत व्यक्ति थे। 13 मार्च 1964 को राज्य सभा में अपने कार्यकाल के अंतिम दिन श्री मैथिलीशरण गुप्त ने जो रचना सुनाई थी, सभापति महोदय ने अपने श्रद्धांजलि भाषण के अंत में उसका यह अंश उद्धृत किया था —

भूलें हम से हुई न होंगी कैसी कैसी ,
पर क्या वैसी, क्षमा आप लोगों की जैसी ?
मांग-मांग कर लोग बहुत कुछ पा लेते हैं ,
किन्तु बड़े तो क्षमा बिना मांगे देते हैं ।
तात, आज भी एक बात के हम अधिकारी,
बने आपकी दया उलट कर याद हमांरी।

*देखें परिशिष्ट II

स्मृति के वातायन से

स्मृति के वातायन से

'भारत-भारती' की रचना करके मैथिलीशरण जी ने देश की जनता में राष्ट्रीयता की भावना भरी और इस राष्ट्रीय भावना तथा प्रेरणा को पाकर भारत के लोगों ने उन्हें राष्ट्रकवि कहना आरम्भ किया और तब से वह राष्ट्रकवि कहलाए जाने लगे। देश के प्रति उनका जो प्रेम और जो भक्ति है, उनके हृदय में देश की प्राचीन संस्कृति के लिए जो गौरव है, वह उनकी रचनाओं में मुखरित हो उठा है। उनके जीवन के अनुरूप ही उनकी कृतियों की भाषा भी बहुत ही सरल, सुन्दर और मधुर है तथा सात्विक भावों से परिपूर्ण है। [12]

डा० राजेन्द्र प्रसाद

*　　　　*　　　　*

मैथिलीशरण जी कालज्ञ पुरुष थे। वे जानते थे कि किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। मौलाना आजाद से पहली बार मैथिलीशरण जी और मैं साथ ही मिले थे। उस दिन मौलाना को देने के लिए मैथिलीशरण जी अपने 'कर्बला' काव्य की कॉपी ले गए थे। मुझे मौलाना से मिलाते हुए उन्होंने कहा था, "मैं तो पुराने ढंग का कवि हूं, मगर ये बिल्कुल अप-टू-डेट हैं।" मौलाना ने कहा, "मगर पुराना चावल ही रोगी का गिजा होता है।" [13]

रामधारी सिंह 'दिनकर'

*　　　　*　　　　*

मैंने उन्हें निकट से देखा है। मैंने उन्हें निष्पक्ष, निर्धूम दृष्टि से देखा है। एक प्रकार से मैंने उन्हें विलग भाव से नापा-तोला है। मैं यही कह सकता हूं कि मैथिलीशरण जी एक ऊंचे मानव हैं। वे राग-द्वेष, ईर्ष्या-मत्सर और लोकप्रियता प्राप्त करने की आपा-धापी से बहुत दूर हैं। उन्होंने कभी भी अपने प्रशंसकों का दल नहीं बनाया। उन्होंने कभी भी अपनी प्रशंसा में लेख नहीं लिखवाए। उन्होंने भूल कर भी कभी अपने समकालीन समानधर्माओं के विरुद्ध कोई बात नहीं कही और न कहलवाई। [14]

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

वस्तुत: दद्दा जिस बात को स्वीकार करते हैं, संपूर्ण रूप में स्वीकार करते हैं। राष्ट्रपति ने जब उन्हें राज्य सभा का सदस्य नामजद किया तो शायद उन्हें कुछ संकोच हुआ हो, पर एक बार जब उन्होंने स्वीकार कर लिया तो शासन के इस ढांचे में वही रस लिया जो साहित्य के प्रणयन में लेते रहे हैं।

उस दिन इस बात पर चर्चा चली तो राज्य सभा में उनके साथी श्रद्धेय पं॰ बनारसी दास चतुर्वेदी बोले, ''हम कांग्रेस दल के अनुशासन में हैं, फिर भी बहुत कम अधिवेशन में जाते हैं, परन्तु दद्दा पर किसी दल का अंकुश न होने पर भी वह नियम से राज्य सभा की सभी बैठकों में शामिल होते हैं और उसकी प्रत्येक गतिविधि में पूरा रस लेते हैं। इतना रस लेते हैं कि सदस्य उन्हें कांग्रेस दल का 'गैर सरकारी व्हिप' मानने लगे हैं।''

विष्णु प्रभाकर

*　　　　*　　　　*

राज्य सभा के सदस्य होने के नाते सभा के अधिवेशन के दिनों में गुप्तजी दिल्ली में रहते थे। बाकी दिनों में उनका स्थिर वास अपने गांव चिरगांव, झांसी में था। चिरगांव और दिल्ली में दर्शक-मण्डलियों की भीड़ लगी रहती थी। दिल्ली में वे विज्ञान भवन के निकट 'मीना बाग' के पैंतीस नम्बर मकान में रहते थे। सभा के दिनों में उक्त मकान के विशाल कमरे में बिछे हुए गद्दे पर कुछ पुस्तकें, तम्बाकू की डिबिया और फोन के समीप शोभित मैथिलीशरण गुप्तजी की भव्य मूर्ति उनके मित्रों एवं दर्शकों को हमेशा नयनाभिराम रही। अन्तिम समय लिखने पर उनका हाथ कांपता था, फिर भी उन्होंने लिखना बिल्कुल छोड़ा नहीं। अपनी लिखी हुई चीज की प्रतिलिपि लेने में उनके छोटे भाई चारुशीलाशरण जी सहायता देते थे। दर्शनार्थ पहुंचने वाले मित्र एवं आराधकों के प्रति गुप्तजी का नम्र व्यवहार, सत्कार-प्रियता, मधुर एवं हार्दिक सम्भाषण उनके उदार एवं उज्जवल व्यक्तित्व के महान परिचायक थे।

डॉ के॰ एस॰ मणि

राष्ट्रकवि के संस्मरण

राष्ट्रकवि के संस्मरण

राज्य सभा पहले राज्य परिषद् थी। पीछे उसका नाम राज्य सभा हुआ। उन्हीं दिनों एक बार मैं नरेन्द्रदेवजी के साथ बैठा बातें कर रहा था। इतने में पंडित जी हंसते-हंसते आये और बोले,''हम लोग लोक-सभा के हैं, तो क्या आप लोगों की सभा को परलोक-सभा कहा जाये?'' नरेन्द्रदेवजी हंस गये और बोले, ''आपको अधिकार है, हमें चाहे जहां बैठाइए।'' हठात मेरे मुंह से निकल गया ''परन्तु पंडितजी, आपको तो दोनों सभाओं में उत्तर देना होगा।'' ''जरूर, मैं तैयार हूं,'' कह कर पंडितजी हंस गये। उनमें विश्वास था।[15]

* * * *

एक दिन हम लोग सेंट्रल हॉल में बैठे बातें कर रहे थे। इतने में किसी विषय पर सदन में मत-विभाजन की मांग पर सदस्यों की पुकार की घंटी बजी। बाध्य न होकर भी मैं मत कांग्रेस दल के ही पक्ष में देता था। ज्यों ही उठकर जाने लगा, नरेन्द्रदेवजी ने मेरा हाथ पकड़ लिया। कहा, ''कहां जाते हो? तुम्हें कांग्रेस के पक्ष में वोट देना है तो मुझे भी विरोध में देना है। तुम जाओगे तो मुझे भी जाना पड़ेगा। हम दोनों के मत आपस में लड़ कर कट मरेंगे। इसलिए अच्छा यही है कि व्यर्थ भागदौड़ न करके सुख से यहीं बैठो।'' यह कहकर पास ही खड़े ''ब्वाय'' को उन्होंने कॉफी लाने का आदेश दिया।[16]

— मैथिलीशरण गुप्त

राष्ट्रपिता के पत्र राष्ट्रकवि के नाम

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा श्री मैथिलीशरण गुप्त को लिखे गए पत्र

5 अप्रैल, 1932

भाई मैथिलीशरणजी

आपका पत्र मिला था। 'साकेत', 'अनघ', 'पंचवटी' और 'झंकार' सब रसपूर्वक पढ़ गया। बहुत अच्छे लगे। परंतु टीका करनेकी मैं अपनी कुछ भी योग्यता नहीं समझता हूं। तो भी आपने मेरे अभिप्राय पूछे हैं और क्योंकि जैसे पढ़ता गया वैसे विचार भी आते रहते थे, इसलिए जैसे आये वैसे ही आपके सामने रखता हूं। उर्मिलाका विषाद अगरचे भाषाकी दृष्टिसे सुन्दर है परन्तु 'साकेत' में उसको शायद ही स्थान हो सकता। तुलसीदासजीने उर्मिलाके बारेमें बहुत कुछ नहीं कहा है यह दोष माना गया है। मैंने इस अभावको दोष दृष्टिसे नहीं देखा। मुझको उसमें कविकी कला प्रतीत हुई है। मानसकी रचना ही ऐसी है कि उर्मिला–जैसे योग्य पात्रका उल्लेख आध्याहारमें रखा गया है, और उसीमें काव्यका और उन पात्रोंका महत्व है। उर्मिला इत्यादिके गुणोंका वर्णन सीताके गुण विशेष बतानेके लिए ही आ सकता था। परंतु उर्मिलाके गुण सीतासे कम थे ही नहीं। जैसी सीता वैसी ही उसकी भगिनीआं। मानस एक अनुपम धर्मग्रन्थ है। प्रत्येक पृष्ठमें और प्रत्येक वाक्यमें सीता सीता रामका ही जप जपाया है। 'साकेत' में भी मैं वही चीज देखना चाहता था। इसमें कुछ भंग उपरोक्त कारणके लिए हुआ। एक और चीज भी कह दूं। दशरथादिका रुदन तुलसीदासजीके मानसमें पढ़नेसे आघात नहीं पहुंचा था। तुलसीदाससे दूसरा कुछ नहीं हो सकता था। परन्तु इस युगके पुस्तकमें ऐसा रुदन अच्छा नहीं भाता है। उसमें वीरताको हानि पहुंचती है, और इधर भक्तिको भी। जो ऐहिक भोगको क्षणिक माननेवाले हैं, आत्मामें जिनका विश्वास है उनको मृत्युका और वियोगका असह्य कष्ट हो ही नहीं सकता है। क्षणिक मोह भले आ जावे। परन्तु उनसे करुणाजनक रुदनकी आशा हम कैसे रखें?

यह सब लिखनेका मेरा उद्देश्य हरगिज नहीं कि आप दूसरे संस्करणके लिए कोई सुधारणा करें। हां, यदि मेरे लिखनेमें आपको कुछ योग्यता प्रतीत हो तो दूसरी बात है।

महादेव मेरे पास आ गए हैं। और क्योंकि मेरे दाहिने हाथमें लिखनेसे कुछ कष्ट होता है और बायें हाथसे लिखनेमें कुछ देर होती है, इसलिए मैंने यह पत्र उनसे लिखवाया है।[17]

आपका

मोहनदास

26 अप्रैल, 1932

भाई मैथिलीशरणजी,

आपका पत्र मिल गया। वह पत्र पत्र नहीं है, परन्तु काव्य है। आपने मुझको हरा दिया है। मैं आपकी बात समझ गया हूं, और उस दृष्टिसे उर्मिलाका विलापको स्थान है। बात यह है कि मुझको कुछ भी कहनेका अधिकार नहीं था। हमारे शास्त्रोंका मेरा अभ्यास यत्किंचित् है, साहित्यका उससे भी कम, भाषाका ज्ञान वैसा हि। यह सब अपनी त्रुटियों को जानते हुए मैंने जो असर मेरे दिलपर हुआ आपको बता दिया। मित्रवर्ग मेरी अपूर्णता जानते हैं तो भी क्योंकि मैं सत्यका पुजारी हुं मेरा अभिप्राय कैसा भी हो चाहते हैं। ऐसे प्रेमके वश होकर मैंने आपको अभिप्राय भेज दिया था। इसके उत्तरमें आपके सुन्दर पत्रकी, काव्यकी, प्रतीक्षा कभी नहीं कर सकता था। इसे मैं रखुंगा, दुबारा पढुंगा। और अब आपने जो दृष्टि दी है उस दृष्टिसे 'साकेत' फिर पढ़ना होगा। मुश्किल यह कि अगरचे आपकी भाषा बहुत आसान है तो भी हिन्दीका मेरा ज्ञान अल्प होनेके कारण कहीं-कहीं समझनेमें कठिनता आती है। और हिन्दी शब्दका ज्ञान भी मेरा बहुत परिमित है यह भी कठिनाईका कारण होता है। हिन्दीमें ऐसा कोई शब्दकोष है क्या जिसमें से 'साकेत' आदि ग्रन्थके प्रत्येक कठिन शब्दका अर्थ मिल सके? मैं जानता हूं कि अधिक परिश्रमसे बहुतसी चीज तो ऐसे हि समझ लुंगा।

अजमेरीजी* को मेरे बन्देमातरम। उनके भजनोंका मुझे खूब स्मरण है। ईश्वर कृपा होगी तो दुबारा किसी दीन सुनुंगा।

हां, 'साकेत' और 'अनघ' दोनों आश्रममें पढ़ानेका मैंने परसरामको लिखा था। सम्भव है उसका आरम्भ भी हो गया हो।[18]

आपका

मोहनदास

*एक मुस्लिम कवि; इन्होंने 1929 में गांधी जी की झाँसी-यात्रा के समय स्वरचित कुछ हिन्दी-पुस्तकें गांधी जी को भेंट की थीं।

15 मई, 1932

भाई मैथिलीशरणजी,

आपका पत्र मिला शब्दकोष भी मिला। और आपकी टिप्पणीके साथ साकेत की एक और प्रति भी मिल गई। टिप्पणीसे मुझको बहुत साहाह्य मिलेगी। हिंदी शब्दसागर भेजनेका मैं आपको कष्ट नहीं दुंगा। संभव है कि कल्याण कार्यालयसे शब्दसागर आ जायगा। ऐसे भी आपकी टिप्पणी और शब्दकोषसे मेरा निर्वाह भली-भांति हो जाएगा। साकेतके बारेमें जो-कुछ लिखा पढ़ी हुई है उसे इस समय प्रकट नहीं कर सकते हैं। आजकल जो पत्र लिखनेकी मुझको इजाजत मिलती है उसमें एक प्रकारकी मर्यादा भी मानी जाती है कि मेरे पत्र प्रकट नहीं होंगे जहांतक मैं कैदमें हूं। और कुछ समयतक यह लिखा पढ़ी अप्रकट रहनेसे कोई हानि होने वाली नहीं है। 'साकेत' में भरी हुई शक्ति ही 'साकेत' को आगे ले जायगी। आपके प्रेमका अनुभव श्री महादेवको मिला था उसका सब वर्णन उससे सुनकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ।[19]

आपका

मोहनदास

*   *   *   *

12 अक्तूबर, 1941

भाई मैथिलीशरण,

आपका पत्र मिला। आप लोगोंने खूब की । मैंने धीरेन्द्र*को लिखा है। मुझको सूत भेजने का खर्च करना ही नहीं चाहिये। सब भले रख लिया जाय। आवेहीगा तो बुना जायगा। आपके सूतकी खादी तो मैं इस्तेमाल करूंगा ही। उसकी चद्दर बन रही है। थोड़े इस्तेमालके बाद काशी भेजने के लिए काकासाहब**को दूंगा। आपकी कविता पढ़ गया। सबको मेरे आशीर्वाद कहो कि जितना सूत भावसे कातेंगे इतना स्वराज नजदीक आवेगा ही। उसके बिना कभी नहीं।[20]

बापू के आशीर्वाद

*धीरेन्द्र मजूमदार जोकि आगरा जेल में मैथिलीशरण गुप्त के साथी थे।

**द.बा.कालेलकर

26 सितम्बर, 1946

भाई मैथिलीशरणजी,

मुझे आपका जिज्ञासु पत्र और दो मित्रों से खादी के चार थान भी मिले। मैं आपको धन्यवाद दूं?

मैंने चरखे के लिए बहुत कुछ खोया है लेकिन मैं नुकसान का बुरा नहीं मानता। मैंने उससे अधिक पाया है। यह असली उपलब्धि तभी हो सकती है जब मैं पूर्णतः अनासक्त महसूस करूं। परन्तु वह दूर की कौड़ी लगता है। जब मेरे अपने लोग गलती करते हैं तो मेरा धैर्य जवाब दे देता है। ऐसा बिल्कुल नहीं होना चाहिए। चरखे का यही संदेश है। चलिए देखते हैं कि ऐसा कब होता है। यदि मैं 125 वर्ष तक जीना चाहता हूं तो मुझे यह स्थिति (अथवा अनासक्ति) शीघ्र प्राप्त करनी होगी।

आपको परिवार में भी बुनाई अवश्य शुरू करा देनी चाहिए; यह मुश्किल नहीं है। मुझे आरंभ में ही इस पर जोर देना चाहिए था; मैंने ऐसा नहीं किया। खैर, जब जागो तभी सवेरा। कबीर एक जुलाहा थे, फिर भी वह हमें कालजयी काव्य दे गए। यदि आप सभी जुलाहा बन जाते हैं तो आपके काव्य की ताकत कहीं अधिक होगी।[21]

बापू के आशीर्वाद

भारतीय संस्कृति के प्रतिपादक: राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त*

मैथिलीशरणजी और मित्रों: राष्ट्रपति तथा राष्ट्रकवि के बारे में काफी कुछ कहा जा चुका है। राष्ट्रपति निर्वाचित होता है जबकि राष्ट्रकवि की पदवी सहज रूप से प्राप्त होती है। मैथिलीशरणजी हिन्दी साहित्य के अविस्मरणीय रचनाकारों में से एक हैं इसी कारण आज हम उनका आदर करते हैं।

मुझे दस वर्षों की अवधि तक राज्य सभा का सभापतित्व करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और इस अवधि के दौरान वह सभा के एक शांत लेकिन प्रभावशाली सदस्य रहे। किसी ने उन्हें ऋषि की संज्ञा दी है। ऋषि भी संसार के कार्यों में भाग लेते हैं, 'कर्तव्य लोकपालनम्'। उनके लिए संसार के कार्यों में भाग लेना और उसे दिशा प्रदान करना आवश्यक होता है। आज शेष विश्व की तरह हमारे देश को भी जीवन में उचित मूल्यों के अभाव का सामना करना पड़ रहा है। हमारे मानदण्डों का पतन हो रहा है। जीवन मूल्यों का ह्रास हो रहा है। ऐसे समय में हमें मैथिलीशरणजी जैसे प्रतिभा संपन्न कवियों की आवश्यकता है, जो हमें उन महान आदर्शों का महत्व समझा सकते हैं, जिनके प्रति हमारा देश समर्पित रहा है; और केवल ये आदर्श ही हमें संदेह, संकट तथा अनिश्चितता की स्थिति से उबार सकते हैं। हम जिस किसी दिशा में भी अपनी दृष्टि ले जाते हैं, हमें गहन अंधकार ही अंधकार दिखाई पड़ता है, परन्तु हमें अवश्य ही यह मान कर चलना चाहिये कि इस गहन अंधकार के पीछे सूर्य अभी भी प्रकाशमान है।

कवि का दायित्व मात्र विचारों को व्यक्त करना नहीं है वरन् भावनाओं, मन:स्थितियों तथा मनोवृत्तियों का संप्रेषण करना भी है।

इनका वर्णन नहीं किया जा सकता; यहां तक कि इन्हें समझना भी कठिन है। इनकी ओर तो मात्र संकेत किया जा सकता है; इन्हें हम केवल महसूस कर सकते हैं।

*20 मार्च 1964 को भारती संगम, नई दिल्ली द्वारा श्री मैथिलीशरण गुप्त के सम्मान में आयोजित समारोह में राष्ट्रपति डा॰ एस॰ राधाकृष्णन द्वारा दिये गये भाषण का हिन्दी अनुवाद।

केवल यही हमें आभास दिये बिना हमारा कायाकल्प कर सकते हैं। एक कवि का यही महान दायित्व है। वह हमारे अस्तित्व को स्पर्श करता है और अपने विचार-सम्प्रेषण के ढंग से हमारे अस्तित्व को ही बदल देता है। चिरकाल से ही हमारे महान कवि हमारी महान परम्परा के संरक्षक रहे हैं। उनमें से प्रत्येक कवि की यह मान्यता रही है कि वह कोई नया परिवर्तन नहीं ला रहा है बल्कि वह बदलते समय के साथ पुरातन की निरंतरता पुन:स्थापित करने का प्रयास मात्र कर रहा है। कालिदास ने वाल्मीकि को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। तुलसीदास ने कहा है: 'नाना पुराण निगमागम सम्मतम्'। यहां हमारे कवि ने 'रामायण' तथा 'महाभारत' जैसे महाकाव्यों के आधार पर अपना दृष्टिकोण बनाया है जिनका ज्ञान हमारे महान साहित्य के कवियों ने हम तक पहुंचाया है। वे किस बात के प्रतीक हैं? वे सत्य, अहिंसा और समन्वय अथवा सामंजस्य के प्रतीक हैं। प्राचीन काल से हमारे यहां द्वैतवाद, सापेक्ष द्वैतवाद तथा अद्वैतवाद की विभिन्न विचारधाराएं देखने में आती हैं। वे सभी एक ही सत्य के विभिन्न पहलू हैं: मैं आपका हूं: आप में ही विद्यमान हूं। इसलिये, चाहे हम स्वयं को द्वैतवादी मानें, अद्वैतवादी अथवा विशिष्टाद्वैतवादी मानें, हम एक ही सत्य के विभिन्न पहलुओं का प्रतिपादन कर रहे हैं। किसी पुरुष अथवा महिला अथवा मानव मात्र की महानता सुख-वैभव की वस्तुओं के संचय में नहीं है, कोई व्यक्ति वैभव के संचयन से महान नहीं बनता, वरन् वह अपने उच्च विचारों से महान होता है क्योंकि वैभव शाश्वत नहीं है।

आप मैथिलीशरण के नाम से जाने जाते हैं। हम राजा 'जनक' की कहानी के माध्यम से मिथिला से सुपरिचित हैं: 'मिथिलायां प्रदीप्तयां न मे दाहयति किंचन:।' जब मिथिला जल रही है, तब मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है; मेरी आत्मा मेरी अपनी है; इसका कोई स्पर्श तक नहीं कर सकता; इसे कोई जला नहीं सकता। मैं अपनी आत्मा का धारक हूं; अन्य सभी चीजें इसके साज सामान हैं; ये सब नश्वर हैं। हमारे महान लोगों ने हमें यही महान पाठ पढ़ाया है और आज मैथिलीशरण जी हिन्दी जगत में उसी संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादक हैं। हम उनके दीर्घजीवन की कामना करते हैं। हमारी यह कामना है कि यहां से निवृत्त हो जाने के पश्चात् वह आने वाले कई वर्षों तक हिन्दी साहित्य को अपना योगदान देते रहें। हम भगवान से प्रार्थना करते हैं कि भविष्य में भी उन पर उनकी कृपा दृष्टि बनी रहे।

परिशिष्ट-II

मैथिलीशरण गुप्त के निधन पर 14 दिसम्बर, 1964 को राज्य सभा में सभापति डॉ॰ ज़ाकिर हुसैन द्वारा श्रद्धांजलि*

श्री मैथिलीशरण गुप्त के निधन के समाचार से इस सभा में न केवल हमें, जिन्हें कि गत वर्ष अप्रैल तक इस सभा में उनका हर्षदायक अनूठा साहचर्य प्राप्त रहा है, सदमा पहुंचा है, बल्कि सभा के बाहर भी उन लाखों-करोड़ों लोगों को भारी सदमा पहुंचा है, जो उन्हें उनकी अद्वितीय काव्य रचनाओं के माध्यम से जानते हैं।

राष्ट्रपति द्वारा साहित्य के एक प्रख्यात और लब्ध-प्रतिष्ठ प्रतिनिधि के रूप में सदस्य नाम-निर्देशित किये जाने पर श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 12 वर्षों तक इस सभा को सुशोभित किया। इस पूरी अवधि के दौरान वह सभा की बैठकों में नियमित रूप से उपस्थित होते रहे और कई अवसरों पर उन्होंने सभा की कार्यवाही में अपना योगदान भी दिया। इन अवसरों पर सभा की कार्यवाही न केवल जीवन्त बन उठी बल्कि उनकी काव्य प्रज्ञा से उसे एक नया अर्थ तथा नया आयाम भी मिला। वह शांत-सौम्य व्यवहार वाले जिन्दादिल इंसान थे और वह जहां कहीं भी गये और जिस किसी के भी साहचर्य में रहे, वहीं उन्होंने अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ी और लोगों को प्रेरित किया। वह 'साहित्य-वाचस्पति' थे और उन्हें राष्ट्रपति द्वारा 'पद्म-विभूषण' से सम्मानित किया गया था। उपाधियों व पदकों से उन्हें सम्मानित किया जाता रहा यह उनके लिये सामान्य बात थी। इतने अधिक सम्मान मिलने पर भी वह पूरी तरह शान्त रहे। उनकी महान विनम्रता अद्वितीय थी जोकि उनके द्वारा इस सभा में अपने अन्तिम सत्र के दौरान 13 मार्च 1964 को सुनाई गई निम्नलिखित पंक्तियों से भी प्रकट होती है:

भूलें हम से हुई न होंगी कैसी-कैसी,
पर क्या वैसी, क्षमा आप लोगों की जैसी?
मांग-मांग कर लोग बहुत कुछ पा लेते हैं,
किन्तु बड़े तो क्षमा बिना मांगे देते हैं।
तात, आज भी एक बात के हम अधिकारी,
बने आपकी दया उलट कर याद हमारी।

*हिन्दी अनुवाद

भावी पीढ़ी उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त उनकी अमर काव्य रचनाओं से अपने को गौरवान्वित महसूस करेगी और कृतज्ञ राष्ट्र स्नेह तथा प्यार से उनका स्मरण करेगा।

मैं सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि वे श्री मैथिलीशरण गुप्त की स्मृति में अपने-अपने स्थान पर एक मिनट तक मौन खड़े रहें।

(तत्पश्चात् माननीय सदस्य एक मिनट तक मौन खड़े रहे)

सचिव इस सभा के गहरे दुःख और सहानुभूति को सूचना शोक संतप्त परिवार के सदस्यों तक पहुंचा देंगे।

संदर्भ

1. राज्य सभा वाद-विवाद, 24 अप्रैल, 1954, कॉलम 4056-4057
2. - वही- 11 मार्च, 1955, कॉलम 1699-1700
3. -वही- 6 मार्च, 1956, कॉलम 1709-1710
4. -वही- 11 मार्च, 1958, कॉलम 2672-2674
5. -वही- 1 मार्च, 1956, कॉलम 1237-1238
6. -वही- 22 दिसम्बर, 1955, कॉलम 3930-3932
7. -वही- 1 मई, 1962, कॉलम 1272-1274
8. -वही- 9 नवम्बर, 1962, कॉलम 323-327
9. -वही- 7 मार्च, 1963, कॉलम 2214-2215
10. -वही- 4 मई, 1963, कॉलम 2078-2081
11. -वही- 13 मार्च, 1964, कॉलम 4279-4280
12. डा॰ राजेन्द्र प्रसाद, अभिनन्दन और शुभकामना, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन समिति, कलकत्ता, 1959
13. रामधारी सिंह 'दिनकर', स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त, संस्मरण और श्रद्धांजलियां उदयाचल, पटना, 1969, पृष्ठ 42
14. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', एकाराधननिष्ठ मैथिलीशरण गुप्त, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन समिति कलकत्ता, 1959,
15. मैथिलीशरण गुप्त, 'जवाहरलाल जी', श्रद्धांजलि संस्मरण, साकेत प्रकाशन, चिरगांव, झांसी, 1979, पृष्ठ 28
16. -वही-, नरेंद्रदेवजी, पृष्ठ 36-37
17. सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड 49, (जनवरी-मई 1932), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 1982 पृ॰ 265-266
18. - वही- , पृ॰ 358-359
19. - वही- , पृ॰ 428
20. - वही- , खंड 75 (अक्टूबर 1941-मार्च 1942) पृ॰ 6
21. संपूर्ण गांधी वाङ्मय (हिन्दी अनुवाद), खंड 92 (अगस्त-नवम्बर 1946), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2001, पृ॰ 245